

•

•

एक प्रमाण

सर्वोच्च न्यायालय में

द्वारा प्रस्तुत किया गया है

ए. ए. ए. ए. ए.

साक्षर सहायक है ।

भूमिका

इस कथन में ज़रामो अत्युक्ति नहीं है कि भारतवर्ष का सर्वांग-पूर्ण इतिहास अभी तक लिखा ही नहीं गया। भारतीय इतिहास के नाम पर अब तक जो कुछ मिलता है, उस का अधिकांश वास्तव में इतिहास की सामग्री मात्र ही है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में तो यह बात और भी अधिक दृढ़ता के साथ कही जा सकती है। इस दिशा में, अब तक जो प्रयत्न हुआ है, हिन्दी के पाठकों को उस का दिग्दर्शन कराने की इच्छा से मैंने यह पुस्तक लिखी है। ईसा की १२ वीं सदी तक के भारतवर्ष के राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा अगले पृष्ठों में पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। जानबूझ कर, इस कृति में, मैंने सभी विवादास्पद विषयों की गहराई में जाने से बचने का प्रयत्न किया है। मेरी राय में, इस के बिना यह कृति सर्वसाधारण पाठकों के लिए अधिक दुर्लभ बन जाती।

इस पुस्तक के लिखने में अनेक विद्वानों की कृतियों से सहायता ली गई है। मैं इस अवसर पर उन सब के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकाशित करता हूँ।

विषय-सूची

- प्रथम अध्याय—भारत भूमि और उसके निवासी (१-१७)
 भौगोलिक विभाग ३—हिमालय ४—उत्तर भारत के मैदान ६—
 भारत की जातियाँ ८—भारत की भाषाएँ १२.
- दूसरा अध्याय—भारतीय इतिहास के स्रोत (१८—३७)
 तिथिक्रम की दिक्कतें १८—ऐतिहासिक साहित्य की कमी २१—
 पुरातत्व की साक्षियाँ २६—विदेशी यात्रियों के लेख ३१—
 प्राचीन इतिहास की दशा ३३
- तीसरा अध्याय—आर्यों से पूर्व का भारत (३८—४४)
 पाषाणयुग ३६—लोहयुग ३६—द्राविड़ जाति ४०—सिन्धु
 की घाटी ४३.
- चौथा अध्याय—वैदिक काल (४५—६६)
 आर्यों की भारत विजय ४५—वैदिक साहित्य ४८—वैदिक काल
 का तिथिक्रम ५४—प्रारम्भिक वैदिक देवता ५६.
- पांचवां अध्याय—आर्य सभ्यता का विकास (६७—११५)
 राजनीतिक जीवन ६७—धार्मिक विचारों की लहरें ७४—वर्ण-
 व्यवस्था का प्रादुर्भाव ८०—स्त्रियों की स्थिति ६३—आश्रम
 व्यवस्था ६६—आर्य साहित्य १००—लेखन कला ११६.
- छठा अध्याय—नवीन धार्मिक आन्दोलन (११६—१४९)
 बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव ११६—महात्मा बुद्ध ११८—बुद्ध की
 शिक्षाएँ १३२—जैन धर्म १४१—जैन साहित्य १४४.



प्राचीन भारत

प्रथम अध्याय

भारत भूमि और उसके निवासी

भौगोलिक विभाग—भारतवर्ष एशिया महाद्वीप का एक विस्तृत देश है। उसका आकार एक टेढ़ी-मेढ़ी तिकोन के समान है। वह हिमालय की पर्वत-श्रेणियों से कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ है। पश्चिम में उसका विस्तार बलोचिस्तान तक है और पूर्व में बरमा तक। उत्तर में संसार के सब से बड़े पहाड़ हिमालय की विस्तृत श्रेणियाँ उसे एशिया के अन्य भागों से पृथक् करती हैं। उसके दक्षिण में ३५०० मील लम्बा समुद्र-तट है। इस तरह से पहाड़ों और महासमुद्रों ने उसे बाकी सम्पूर्ण संसार से पृथक् कर रक्खा है। भारतवर्ष की इन भौगोलिक परिस्थितियों ने उसके इतिहास पर भी स्पष्ट प्रभाव डाला है। इन प्रभावों को समझने के लिए इन भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक है। इस महादेश में सभी तरह की भौगोलिक परिस्थितियाँ मौजूद हैं, तथापि मोटे तौर पर इन उसे तीन भागों में बाँट सकते हैं—हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ, उत्तराय भारत के विस्तृत मैदान और दक्षिण।

हिमालय—प्रकृति ने भारतवर्ष के उत्तर-पूर्व, उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम में जैसे हिमालय की दीवार खड़ी कर रखी है। उत्तरीय सीमाप्रान्तों की इस सुदृढ़ और अदृढ़ दीवार की लम्बाई करीब १५०० मील है। हिमालय बरफ़ का घर है। उसकी ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियों ने भारतवर्ष और चीन को इतनी पूर्णता के साथ पृथक् कर रखा है कि इन दोनों देशों के पास-पास होते हुए भी इस सैकड़ों मील लम्बे सीमान्त प्रदेश के किसी भी भाग से सेना सहित आर-पार पहुँच सकना करीब-करीब असम्भव रहा है।

इन पर्वत-श्रेणियों ने जहाँ भारतवर्ष को उत्तर की ओर से होने वाले आक्रमणों से बचाए रखा है, वहाँ इस देश को समृद्ध बनाने में भी बड़ा भाग लिया है। भारत सदा से कृषि-प्रधान देश रहा है; उपजाऊ भूमि उसकी सब से बड़ी निधि है। इस भूमि को उपजाऊ बनाने का कार्य हिमालय ने किया है। हिमालय की सैकड़ों मील लम्बी और बरफ़ से आच्छादित पर्वत-श्रेणियों से वीसियों नदियाँ निकलती हैं और वे इस देश के उत्तरीय मैदानों को सींचती और उपजाऊ बनाती हैं। इन नदियों में सिन्ध, गंगा और ब्रह्मपुत्र प्रमुख हैं। बाकी सभी नदियाँ इन तीनों नदियों में आकर मिल जाती हैं। इन नदियों से सैकड़ों नहरें निकाली गई हैं। इसके अतिरिक्त हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ इस देश को उत्तर की ठण्डी हवाओं से बचाती हैं, और हिन्द-महासागर की मानसून को इस देश से बाहर जाने से रोकती हैं।

हिमालय की श्रेणियाँ पश्चिम में जा कर समाप्त हो जाती हैं

और उसके बाद, सुलेमान पर्वत की कम ऊँची श्रेणियाँ गुरु होती हैं। सुलेमान और उसके साथ के कुछ अन्य पहाड़ भारतवर्ष को अफ़ग़ानिस्तान और बलोचिस्तान से पृथक् करते हैं। इन पहाड़ों में अनेक बहुत ही मइत्वपूर्ण दरें हैं। अफ़ग़ानिस्तान पहाड़ी प्रदेश है, कुछ नदियाँ वहाँ से निकल कर इस पार सिन्धु नदी में आ मिली हैं और उन नदियों के किनारे-किनारे इस देश में आना इतना कठिन नहीं है। पिछली बीसियों शताब्दियों में सैकड़ों बार हज़ारों-लाखों विदेशी इन्हीं दरों में से हो कर इस उपजाऊ देश पर आक्रमण करने आए हैं। इन दरों में सबसे प्रमुख खैबर का दर्रा है। काबुल से पेशावर को मिलाने वाला यह दर्रा काबुल नदी की घाटी में अवस्थित है। कुर्रम की घाटी वाले दर्रे का नाम कुर्रम है, यह अफ़ग़ानिस्तान से बन्नू को मिलाता है। टोची दरिया की घाटी टोची दर्रे के नाम से प्रसिद्ध है, वह टोची को भारतीय सीमा प्रान्त से मिलाता है। गोमल का दर्रा डेरा इस्माइल ख़ाँ के पास खुलता है। बोलान का दर्रा कन्धार और सिन्ध को मिलाता है। इन सभी दरों से विदेशी आक्रान्ता भारत-वर्ष पर चढ़ाई करने के लिए आते रहे हैं।

हिमालय की उत्तर-पूर्वीय श्रेणियाँ भारतवर्ष से ब्रह्मा को पृथक् करती हैं, परन्तु हिमालय के इस हिस्से में भी कुछ दरें हैं, जिनमें से गुजर सकना असम्भव नहीं है। इन दरों की ऊँचाई इतनी अधिक है कि ऐतिहासिक युग में इस ओर से भारतवर्ष पर बहुत कम हमले हुए हैं। तथापि पूर्वीय भारत में बसने वालों जातियों की शकल-सूरत से यह साफ़-साफ़ जाना जा सकता है कि कभी

ये लोग भी, सम्भवतः इन्हीं दरों में से हो कर हिन्दोस्तान में आए होंगे ।

उत्तर-भारत के मैदान

सिन्ध, गंगा तथा उनकी सहायक नदियों को हम इन भागों में बाँट सकते हैं—

१—पंजाब का विस्तार सिन्ध से यमुना तक है । सीमा प्रान्त के निकट होने के कारण उत्तर-पश्चिम के दरों से जितने भी आक्रान्ता हिन्दोस्तान पर चढ़ाई करने आए, उनका पहला मुक़ाबिला पंजाब में ही हुआ । गंगा की उपजाऊ घाटी को राजपूताना के रेगिस्तान और अरबली की पर्वतमालाएँ पंजाब से जुदा करती हैं । पश्चिमी-पंजाब का तंग-सा हिस्सा ही गंगा और सिन्ध की इन दोनों महान घाटियों को मिलाता है । इस तरह से गंगा नदी की घाटी को एक दोहरी दीवार मिल गई है । यही कारण है कि भारतवर्ष के इतिहास में दक्षिण-पंजाब, पानीपत के आस-पास का वह तंग-सा मैदान जो पंजाब और संयुक्त-प्रान्त को मिलाता है, सदैव युद्ध-भूमि माना जाता रहा है ।

२—गंगा की घाटी को भारतवर्ष का हृदय कहना चाहिए। यह घाटी ससार की सबसे अधिक आबाद, उपजाऊ और विशाल घाटियों में है । दिल्ली से काशी तक विस्तृत यह प्रान्त भारतवर्ष की सभ्यताओं, धर्मों और साम्राज्यों का केन्द्र रहा है । गंगा की घाटी का इतिहास अधिकांश में भारतवर्ष का इतिहास है । इस घाटी के उपजाऊ मैदान, जहाज़रानी के योग्य दरिया, बड़े-बड़े जगल, उपजाऊ ज़मीन और खनिज-वैभव—इन सबने इस प्रदेश के

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100

हैं। काश्मीर के ब्राह्मण इस जाति का एक विशुद्ध नमूना हैं। सुदूर दक्षिण में भी कुछ लोग इस जाति के पाए जाते हैं। मालानगर के नन्चूदरी ब्राह्मण इसी जाति के हैं।

५. मिश्रित जातियाँ—भारतीय इतिहास के आरम्भ ही से विभिन्न जातियों के मिश्रण का काम जारी रहा है। उनमें भेद कर सकना भी बहुत कठिन नहीं है। आर्य-द्राविड, मंगोल-द्राविड आदि किस्मों में उन्हें आसानी से बाँटा जा सकता है। उत्तरीय भारत में भी द्राविड रुधिर की जातियाँ उपलब्ध होती हैं। संयुक्त प्रान्त के कुछ भाग तथा कुछ अन्य हिस्सों में इन जातियों का अंश स्पष्टतया दिखाई देता है। भारत के उत्तर-पश्चिमी दरों से होकर समय-समय पर अनगिनत जातियों के लोग इस देश में आते रहे हैं। इनमें से बहुत से लोग इसी देश में बस गए, भारतीयों ने उन्हें अपने में विलकुल खपा लिया। इनमें शक, यूची और हूण विशेष प्रसिद्ध हैं। इन तीनों जातियों के लोग लाखों की तादाद में मिल कर इस देश पर हमले करते रहे। बारी-बारी से इन्होंने भारत के कुछ भाग को जीता और उसमें वे बस भी गए। ख्याल है कि बहुत से राजपूत, जाट और गूजर इन्हीं शकों और हूणों की सन्तान हैं। ऐतिहासिक प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भारतीय आर्य इन शकों, हूणों आदि से विवाह, खान-पान आदि का सम्बन्ध आमतौर से करते रहे, और उन्हें अपने में मिलाते चले गए।

६. मुसल्मान—मुसल्मानी आक्रमणों ने इस देश में एक नई जाति की वृद्धि कर दी। आठवीं सदी के अरबी आक्रमणों से

उत्तर भारत की जड़ोजड़ ने स्वभावतः ही भागीय इतिहास के अधिकांश पृष्ठों को तैर रक्खा है। ऐतिहासिक भी दक्षिण की ओर अधिक आकृष्ट नहीं हुए। दूसरी ओर दक्षिण भारत के सैकड़ों मील लम्बे और कटे-कटे समुद्राट का लाभ उठा कर तौं के निवासी जहाजों और नौकाओं द्वारा समुद्र में से होकर व्यापार करने में सदैव दक्ष रहे हैं।

समुद्रतट

पुराने जमाने में भारत का समुद्रतट बहुत आकर्षक नहीं समझा जाता रहा। पश्चिम में, पश्चिमी घाट का ७०० मील लम्बा समुद्र-तट विलकुल सीधा चला गया है। समुद्रतट के निकट पहाड़ियाँ हैं। मराठे लोग इन्हीं पहाड़ियों के शिखरों पर बने किलों में से मुगल सेनाओं का सामना किया करते थे। पूर्व के तट पर भी, उन दिनों अच्छे बन्दरगाहों की संख्या अधिक नहीं थी। उर का अधिकांश तट उथला था। फिर भी इस ओर से सामुद्रिक आवागमन काफ़ी अंश में होता था। इसी ओर से होकर भारतीय नागरिक लंका, ब्रह्मा, जावा, सुमात्रा, स्याम, इण्डोचीन, बोर्नियो और वाली तक जाते रहे। सन् १४६२ में पहले-पहल यूरोप का वास्को-डीगामा ही पश्चिमी घाट पर आकर उतरा, और उस दिन से भारत के सामुद्रिक आवागमन के इतिहास में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ।

भारत की भाषाएँ

भारत की प्रमुख-भाषाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है—भारतीय-आर्य और द्राविड। उत्तरीय हिन्दोस्तान की सभी भाषाएँ आर्य-विभाग में आती हैं। इनमें पंजाबी, काश्मीरी, हिन्दी,

इन स्पष्ट और भारी भेदों के रहते भी भारतीय इतिहास का कोई विचार्यो इस देश की एकता के आधारभूत तत्वों को देखे बिना नहीं रह सकता। राजनैतिक दृष्टि से सम्पूर्णा भारतवर्ष बहुत कम समयों में एक ही सम्राट् के नीचे आया, तथापि वैदिक-युग से इस देश के विभिन्न शासकों के सामने भारत-साम्राज्य स्थापित करने का आदर्श सदैव बना रहा। वैदिक काल में सम्पूर्णा भारतवर्ष के सम्राट् को चक्रवर्ती-सम्राट् कहा जाता था और इस उद्देश्य से राजसूय और अश्वमेध यज्ञ भी किए जाते थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन यज्ञों के विधान का वर्णन बहुत विस्तार के साथ दिया गया है। आरम्भ ही से एक प्रतिभाशाली जाति इस देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक संस्थाओं और प्रथाओं का संचालन करती रही है। भारतवर्ष की विभिन्न जातियाँ जब से भारतीय आर्यों के प्रभाव तथा संसर्ग में आईं, तब से वे एक संस्कृति के सूत्र में बँध कर क्रमशः एक खास तरह की सभ्यता का विकास करती गईं। इस संस्कृति को 'हिन्दुत्व' का नाम दिया जा सकता है। 'हिन्दुत्व' को कोई एक परिभाषा करना कठिन है। तथापि उसे समझने के लिए कहा जा सकता है कि उसमें क्या व्यवस्था की प्रथा है, संस्कृत उसकी पवित्र भाषा है, ब्राह्मण उसका पुरोहित और स्वाभाविक नेता हैं, ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसके सब से बड़े देवता हैं, काशी, हरिद्वार आदि उसके तीर्थ हैं और गो हिन्दुओं के लिए पवित्रतम जीव है। यह हिन्दुत्व, हजारों भेदों के रहते भी, इस विस्तृत महा-देश के

करोड़ों निवासियों को दसों शताब्दियों से एक ही सभ्यता के सूत्र में पिरोये हुए है। हिन्दुत्व इस समूचे देश की रग-रग में विद्यमान है।

ऐतिहासिक सिन्ध का कथन है— “निस्सन्देह भारतवर्ष में एक आधारभूत एकता है, वह एकता जो भौगोलिक पृथक्ता या राजनीतिक प्रभुत्व से उत्पन्न हुई एकता से भी बहुत गहरी है। रुधिर, रंग, भाषा, पोशाक मज़हब और रीतिरिवाजों की भिन्नता को भारतवर्ष की वह गहरी एकता खूब अच्छी तरह ढाँपे हुए है।”

एक गुथीली कहानी - भारतवर्ष एक तरह से एक छोटा महाद्वीप है, जिसमें असंख्य भेद पाये जाते हैं। ऐसे महादेश का एक सीधा, सम्बद्ध और सरल इतिहास नहीं हो सकता। इसके भूतकाल का इतिहास लम्बा और गुथीला है। उसमें जगह-जगह भारी चढ़ाव-उतार हैं। ऐसी दशा में एक ऐतिहासिक को केवल ऊपरी रूपरेखा से ही सन्तोष कर लेना पड़ता है। इस देश की सम्पूर्ण धार्मिक संस्थाओं तथा समय-समय पर बने छोटे-छोटे राज्यों का विस्तृत वर्णन न तो सम्भव ही है और न उसकी आवश्यकता ही है। ऐतिहासिक तो केवल इस देश के सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनों का ही वर्णन कर सकता है। ये आन्दोलन ही इस देश के इतिहास की आत्मा हैं, ये महान आन्दोलन इस देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक अपना प्रभाव डालते रहे। भारतीय आर्यों की यह एक बड़ी महत्वपूर्ण कृति थी कि उस युग में, जब आवागमन आसान नहीं था, अनेक महान सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलन इस लाखों मील क्षेत्रफल के देश

में सब ओर व्याप्त होते रहे । भारतवर्ष का यह सभ्यता का साम्राज्य केवल इस देश तक ही सीमित नहीं रहा । यह मध्य एशिया, उत्तर-पश्चिमी अफ्रिका, कम्बोडिया और दक्षिण-पूर्व में बोर्नियो तक व्याप्त हो गया । भारत की इस महान सभ्यता का प्रभाव चीन, जापान और मंगोलिया तक भी पड़ा ।

दूसरा अध्याय

भारतीय इतिहास के स्रोत

तिथिक्रम की दिक्कतें

भारतवर्ष के इतिहास के निर्माण में सब से बड़ी दिक्कत वैदिक और प्राग् ऐतिहासिक काल के तिथि-क्रम का निर्णय करने में होती है। इस सम्बन्ध में एक दूसरे को काटने वाले विभिन्न मत पेश किए जाते हैं, और वास्तव में उनका आधार भी इतना अप्रामाणिक है कि उन पर बहुत भरोसा किया नहीं जा सकता। वर्तमान ऐतिहासिक भारतीय तिथिक्रम की इमारत का निर्माण सिकन्दर की भारत-विजय के आधार पर करते हैं, क्योंकि ग्रीक इतिहास में उसकी तिथि उपलब्ध होती है। प्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकों ने लिखा है कि भारत की सीमा पर सिकन्दर को सेण्ड्राकोटस नाम का एक भारतीय राजकुमार मिला। उसने सिकन्दर को राजा जैण्ड्रमस की राजधानी पालीबोथ्रा पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। यह सरल कल्पना को गई कि इस घटना का सेण्ड्राकोटस पुराणों का चन्द्रगुप्त मौर्य था और जैण्ड्रमस नन्द तथा पालीबोथ्रा पाटलिपुत्र। सौभाग्य से यह नामसाम्य एक और आधार पर भी सिद्ध हो गया। अशोक के शिलालेखों में जिन पाँच

हुआ। उदाहरणार्थ गुप्त साम्राज्य के प्रायः सभी लेखों में गुप्तसम्बत का प्रयोग किया गया है, मगर यह तथ्य ज्ञात करने में वर्तमान ऐतिहासिकों को करीब ५० साल मेहनत करनी पड़ी कि यह सम्बत गुप्त सम्बत ही है। उससे पूर्व यह एक भारी समस्या थी। मन्दसोर के शिलालेख से यह समस्या हल हुई। तब जाकर सन ३१६-२० ईसवी गुप्त-सम्बत का प्रथमवर्ष स्वीकार किया जा सका। उससे पूर्व तक ३०० वर्षों के तिथिक्रम के सम्बन्ध में निश्चय के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता था। अभी तक भी यह निश्चय नहीं किया जा सका कि कुशान राजाओं के राज्य-काल की तारीखें क्या थीं, यद्यपि इस सम्बन्ध में ऐतिहासिकों ने बड़ी मेहनत की है। भारतीय साहित्य में करीब ३० सम्बतों का प्रयोग किया गया है और विभिन्न लेखक विभिन्न समयों में नए-नए सम्बतों का प्रयोग करते रहे हैं।

भारतीय इतिहास के विद्यार्थी को कदम-कदम पर तिथिक्रम के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी दिक्कों का सामना करना पड़ता है, उस के सामने जो वृत्तान्त रक्खे जाते हैं, उनके वर्णनों में सदियों का अन्तर पाया जाता है। महाकवि कालिदास के सम्बन्ध में अभी तक कोई सर्वमान्य तिथि निश्चित नहीं की जा सकी। विभिन्न ऐतिहासिकों ने उनकी तिथि पशुली सदी ईसा पूर्व से ५ वीं सदी ईस्वी तक निश्चित की है। अर्थात् उनकी तारीखों के सम्बन्ध में जो मत प्रचलित हैं, उनमें ६ सदियों का अन्तर है! इसमें सन्देह नहीं कि अनेक प्रतिभाशाली और बहुश्रुत ऐतिहासिकों के अनथक प्रयत्न से तिथिक्रम के सम्बन्ध की अनेक दिक्कतें हल की जा सकी हैं, परन्तु अब भी इस

राजाओं में ऐतिहासिक वृद्धि हो या न हो, परन्तु यह एक तथ्य है कि अपने कार्यों के सम्बन्ध में वे विस्तृत रिकार्ड रक्खा करते थे। ये रिकार्ड बाकायदा और प्रारम्भिक आधारों पर तैयार किए जाते थे। इस बात के विश्वसनीय प्रमाण मिले हैं कि ईसा से चार सदी पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल तक ये रिकार्ड बाकायदा रक्खे जाते थे। परन्तु अनेक कारणों से ये रिकार्ड नष्ट हो गए। प्रतिकूल जलवायु, वर्षा, कृमि, और राजनीतिक गड़बड़ों से ये रिकार्ड नष्ट हो गए। प्राचीन हिन्दू काल में रिकार्ड रखने का काम वंशपरम्परागत भाटों और चारणों के संपुर्ण था। इनमें से कुछ रिकार्ड, जैसे नेपाल और उड़ीसा की राजवंशावलियाँ, आज भी उपलब्ध होती हैं। कर्नल टाड ने अपने प्रसिद्ध "राजस्थान" का निर्माण भी इन्हीं परम्परागत वंशावलियों के आधार पर किया है। टाड की यह पुस्तक सन १८२६ में प्रकाशित हुई थी। इसी तरह कुछ और वंशावलियाँ भी प्राप्त हुई हैं, परन्तु इस तरह का अधिकांश साहित्य विनष्ट हो गया है।

प्राचीन पुरावृत्त—पुराणों में प्राचीन राजवंशावलियों की बहुत सी सूचियाँ संप्रहीत हैं। स्वर्गीय पार्जीटर ने बड़ी मेहनत से इन वंशावलियों का विश्लेषणात्मक सम्पादन और संप्रह किया है। गुप्त वंश के प्रारम्भ तक के राजवंशों का वर्णन पुराणों में है। प्राचीन इतिहास में से शक आदि कुछ विदेशी जातियाँ का सचित्र मा वर्णन ही पुराणों में पाया जाता है, इन राजवंशों का जो वर्णन पुराणों में है, वह बहुत स्थाना पर विकृत, अनिश्चयोक्तिपूर्ण तथा अपने को ही ग्वडित करने वाला है। कहीं-कहीं समकालीन राजवंशों का एक दूसरे के बाद रत्न दिया गया है। यह वर्णन है भी

प्राप्त होते हैं। इन ग्रन्थों में जो कथानक वर्णित हैं, वे इतिहास वर आश्रित हैं। महाकवि बाण का 'हर्ष चरित', कविवर विश्वामित्र का 'विक्रम देव चरित' और पद्मगुप्त का 'नवसाहस्रिका चरित' इसी किस्म की कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त बल्लाल का 'भोज प्रबन्ध', वाक्पतिराज का 'गौडवाह', चन्द्र वरदाई का 'पृथ्वीराज चरित' और किम्बी अज्ञातनाम लेखक का 'पृथ्वीराज विजय' भी इसी श्रेणी के ग्रन्थ हैं। दक्षिण भारत के साहित्य में भी इस तरह के अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थों का अभाव नहीं है। तामिल कविताएँ, कलावती, आदि कृतियाँ इसी प्रकार की हैं।

उपर्युक्त साहित्य से यह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि भारत के प्राचीन ग्रन्थों में ऐतिहासिक बुद्धि का अभाव नहीं था। तथापि यह भी प्रतीत होता है कि उस युग के प्रभावशाली, पढ़े-लिखे लोग ऐतिहासिक साहित्य को दार्शनिक साहित्य के समान महत्त्व नहीं देते थे।

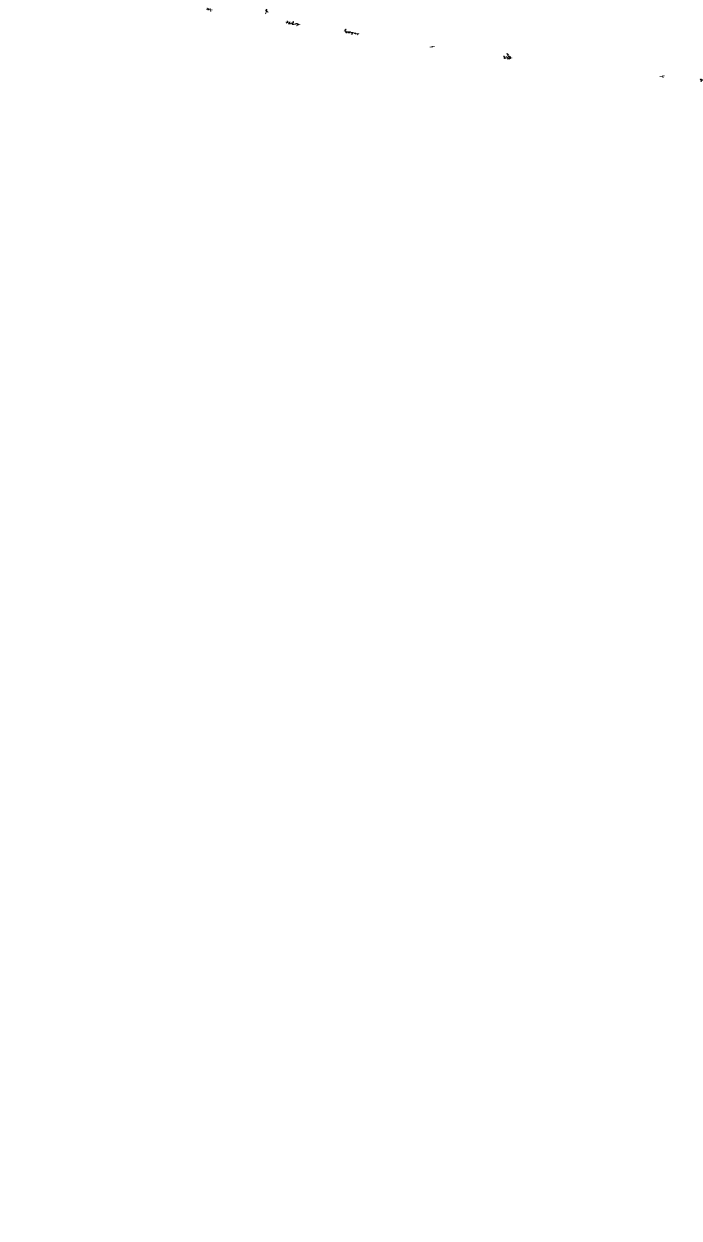
प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

१. इस देश का साहित्य
२. भौतिक अवशेष
३. विदेशियों के लेख

ईसा से ५०० वर्ष पहले का इतिहास बिलकुल ही वेसिलसिले का और अनिश्चित-सा है। परन्तु यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में आर्य सभ्यता और आर्य साहित्य का विकास उन्हीं दिनों हुआ। इसी युग में प्राचीन आर्यों के धार्मिक विचार, साहित्य, सामाजिक-पराक्रम, राजनीतिक सब आदि का विकास और निर्माण

हुआ। उस काल का इतिहास जानने के लिए हमारे पास केवल संस्कृत साहित्य का ही आधार है। सातवीं सदी ईसा पूर्व से क्रमशः साहित्यिक प्रमाणों की वृद्धि होती गई है। इस युग के लिए न केवल हमारे पास ब्राह्मण ग्रन्थ ही मौजूद हैं, अपितु बौद्ध, जैन और तामिल ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं। बड़े ही धैर्यपूर्ण अन्वेषणों से इस युग के सम्पूर्ण साहित्य को मथ कर ऐतिहासिक घटनाएँ ढूँढ़ निकाली गई हैं। बहुत कुछ कर लिया गया है, मगर अब भी बहुत कुछ करना बाकी है।

ऐतिहासिक अथवा अर्ध-ऐतिहासिक साहित्य के अतिरिक्त भारतवर्ष के अन्य प्राचीन साहित्य में भी अनेकों ऐसी बातें मिलने के रूप में भरी पड़ी हैं, जिनके आधार पर इस देश का क्रमबद्ध इतिहास निर्माण करने में बड़ी सहायता मिल सकती है। इस साहित्य का समालोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने से प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य के घटना वर्णनों का सही-सही मतलब समझने तथा प्राचीन तिथिक्रम का सिलसिला जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया जा सकता है। इस साहित्य से, कहीं-कहीं तो, ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ता है, जिनके सम्बन्ध में ऐतिहासिक साहित्य में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। वैदिक तथा प्राग्वैदिक काल के लिए हमारे पास प्राचीन-साहित्य ही एकमात्र आधार है। भारतवर्ष के इतिहास का निर्माण करने में वैदिक तथा संस्कृत साहित्य पालि भाषा का बौद्ध साहित्य प्राकृत भाषा का जैन साहित्य, संस्कृत तथा पालि भाषाओं के अन्य साहित्य से बड़ी अनून्व सहायता प्राप्त हुई है और हो रही है।



प्राचीन भारत

है कि इन बहुमूल्य शिलालेखों में हमें जो ऐतिहासिक ज्ञान उपलब्ध होता है वह आनुशंगिक है, उनके बनाने का उद्देश्य ऐतिहासिक रिकार्ड रखना नहीं था। इस लिए इन तथा इसी ढंग के अन्य शिलालेखों से हमें जो सहायता मिलती है, उसे प्राप्त करने के लिए बड़ी मेहनत और धैर्य की दरकार होती है। इन सब शिलालेखों का एक दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध है, यह जानने से हमारा इतिहास ज्ञान बहुत बढ़ सकता है। शिलालेखों के धैर्यपूर्ण अध्ययन का यह कठिन कार्य अभी करीब सौ सालों से ही शुरू हुआ है।

प्राचीन लेखों में दानपत्रों की संख्या सब से अधिक है। इनमें से बहुत से दानपत्रों को एक तरह से 'बयनामा' भी कहा जा सकता है। इस तरह के बहुत से लेखों में सम्पत्ति, अधिकार, कर, फीस आदि का वर्णन है। अधिकांश दानपत्र राजाओं की ओर से विभिन्न प्रजाजनों को लिखे गए हैं। इनसे भी प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। प्राचीन भारत के भूगोल तथा तिथिक्रम का निर्णय करने में इन दानपत्रों से पर्याप्त सहायता मिली है।

ये शिलालेख भारतवर्ष भर में से प्राप्त हुए हैं। पेशावर से लेकर दक्षिण तक और आसाम से लेकर काठियावाड़ तक; साथ ही भारत से बाहर अफ़गानिस्तान, नैपाल, मध्यएशिया आदि खण्डो तथा कम्बोडिया, चम्पा, जावा आदि द्वीपों से भी भारतीय शिलालेख या धातुलेख प्राप्त हुए हैं। आर्यों ने मलाया आर्चीपेलागो, दक्षिण-पूर्व-एशिया, मध्य-एशिया और तुर्किस्तान में अपना राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक प्रभुत्व स्थापन करने में जो सफलता

प्राप्त की थी, उसके प्रमाण्य उन देशों में प्राप्त शिलालेखों से मिलते हैं। ये शिलालेख हजारों की संख्या में हैं। प्रति दिन नए-नए शिलालेख प्राप्त हो रहे हैं। इस दिशा में काफ़ी अन्वेषण किया गया है, परन्तु अभी और अधिक और गहरे अन्वेषण की आवश्यकता है। प्राचीन परम्पराओं की मदद से हम इन शिलालेखों द्वारा ज्ञात घटनाओं और तिथियों के व्यवधान को पूरा कर सकते हैं। भारतीय इतिहास के निर्माण में इन शिलालेखों को अतिरिक्त प्रमाण्य के रूप में स्वीकार किया जाता है।

बहुत अधिक महत्त्व के शिलालेख काफ़ी फाठनाई से मिलते हैं। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक लेखों का निर्देश यहाँ किया जाता है। इनके नाम हैं—अशोक का रुमिन्देई (Rumendie) का शिलालेख (तीसरी सदी ईसा पूर्व), उड़ीसा के खारडेल का हाथीगुम्फा में प्राप्त शिलालेख (दूसरी सदी ईसा पूर्व), महासत्तप स्ट्रदामन का गिरनार में प्राप्त शिलालेख (दूसरी सदी ईस्वी), समुद्रगुप्त का अलाहाबाद में प्राप्त शिलालेख (चौथी सदी ईस्वी), राजा चन्द्र का मइरौली में प्राप्त शिलालेख (चौथी या पाचवी सदी ईस्वी), वत्सभट्टी का मन्दसोर में प्राप्त शिलालेख (पाचवी सदी ईस्वी), यशोधर्मन का मन्दसोर में प्राप्त शिलालेख (पाचवी सदी ईस्वी), हूयाराज वारमान और मिहिरकुल के शिलालेख (पाचवी और छठी सदी ईस्वी), पुलिफेशिष का एहोल में प्राप्त शिलालेख (सातवी सदी ईस्वी), बनवाली के षड्मन्द-वंश का तालगुन्द में प्राप्त शिलालेख और पश्चिमी

गंग राजाओं के श्रवण-वेल-गोल में प्राप्त शिलालेख । इन सब से न केवल प्राचीन राज्यों के इतिहास का ढांचा ही ज्ञात होता है, अपितु तत्कालीन सामाजिक संस्थाओं, सिंचाई, स्थानीय राज्यों, न्याय, शासनप्रथा और साहित्य आदि पर भी काफ़ी प्रकाश पड़ता है ।

आज यदि सम्राट् अशोक मौर्य को प्राचीन भारतीय इतिहास का सब से बड़ा व्यक्ति स्त्रोकार किया जाता है, तो इसका एक बहुत मुख्य कारण अशोक के समय के वे शिलालेख हैं, जिनके द्वारा उस महान् सम्राट् के राज्यकाल को बहुत-सी महत्वपूर्ण सचाइयाँ ज्ञात हो सकी हैं । यदि हमें गुप्तवंश के समय के सैकड़ों शिलालेख प्राप्त न हुए होते, तो हम आज उन महान गुप्त सम्राटों के सम्बन्ध में कुछ भी न जानते होते । सम्भवतः गुप्तवंश प्राचीन भारतीय राजवशों में सब से अधिक महत्वपूर्ण, और कुछ अंशों में तो मौर्यवंश से भी अधिक महत्वपूर्ण है । गुप्तवंश के सम्राट् समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त भारतीय इतिहास की दो अत्यधिक महत्वपूर्ण व्यक्तियाँ हैं । परन्तु यह एक विचित्र बात है कि इन दोनों महान सम्राटों का वर्णन भारतीय साहित्य में नहीं मिलता । कहीं पर इन दोनों के सम्बन्ध में एक भी लाइन प्राप्त नहीं होती ।

सिक्के—इतिहास की दृष्टि से प्राचीन सिक्कों की भी पर्याप्त महत्ता है, क्योंकि उन पर राजाओं की तिथि और उनके वंश के सम्बन्ध में लिखा रहता है । उनसे तिथिक्रम बनाने में बड़ी सहायता मिलती है । सिक्कों की तारीखों से इतिहास के तिथिक्रम की एक समस्याएँ हल हुई हैं । दूसरी सदी ईसा पूर्व के आस-पास जो इण्डो-ग्रीक, इण्डो-पार्थियन और इण्डो-बैक्ट्रियन राजवश

३. प्रारम्भिक मुसलमान लेखक

ईसा से पाँचवीं सदी पूर्व ग्रीस के महान लेखकों, हिरोडोटस (Herodotus) तथा टेसिआज़ (Ktesias) ने जो रचनाएँ की थी, उनमें भी भारत का वर्णन मिलता है। उसके बाद ईसा से चौथी सदी पूर्व जब सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई की थी, तब उसके साथ अनेक प्रसिद्ध यूनानी लेखक भारतवर्ष में आए थे, उनकी कृतियों में भारत का वर्णन है। तदनन्तर सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के समय यूनानी राजा सैल्यूकस का सुप्रसिद्ध दूत मैगस्थनीज़ वर्षों तक भारतवर्ष में रहा। मैगस्थनीज़ ने अपने भारत निवास के संस्मरण विस्तार के साथ लिखे थे। ये संस्मरण अब उपलब्ध नहीं होते, परन्तु मैगस्थनीज़ के जिन लेखों को अन्य पाश्चात्य लेखकों ने उद्धृत किया था, वे आज भी उपलब्ध होते हैं, उनसे चन्द्रगुप्त कालीन भारत का इतिहास लिखने में अमूल्य सहायता मिली है। टालेमी (Ptolemy) तथा प्लिनी (Pliny) की कृतियों और 'पैरीप्लस आफ़ एरीथ्रियन सी' के अज्ञात प्राचीन लेखक की रचना से भी भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञात हुआ है।

ईसवी सन के प्रारम्भ तक चीन और भारतवर्ष में अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। दोनों देशों का सम्बन्ध करीब १००० वर्षों तक अक्षूण्य बना रहा। पाँचवीं सदी ईसवी के आरम्भ से भारत में ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से आने वाले चीनी यात्रियों का नाँव निरन्तर लगा रहा। सैकड़ों चीनी उन दिनों भारतवर्ष के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विश्व-विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करत थे। तब चीनी जनता भारतवर्ष को अपना तीर्थ स्थान मानती

थी। जो चीनी यात्री इस देश में आए, उनमें अनेक महान विद्वान भी थे। अनेकों ने इस समूचे देश का परिभ्रमण किया। क़रीब ६० चीनी यात्रियों द्वारा लिखे गए भारत वृत्तान्त आज भी प्राप्त होते हैं। इनमें फ़ाहियान (चौथी सदी) ज्वान च्वांग अथवा ह्यूनसांग (सातवीं सदी) इत्सिंग (सातवीं सदी) विशेष महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध हैं। इन तीनों यात्रियों के वर्णनों, इनमें भी ह्यूनसांग की रचनाओं से. तत्कालीन भारत के इतिहास पर प्रत्येक दृष्टि से गहरा प्रकाश पड़ता है।

साथ ही भारतवर्ष के नालन्दा, उज्जैन आदि प्रमुख विश्व-विद्यालयों के प्रोफेसरों को समय-समय पर व्याख्यान देने के लिए चीन में निमन्त्रित किया जाता था। ये विद्वान अपने साथ भारतीय साहित्य की अनेक उत्तम कृतियाँ चीन में ले जाते थे और चीनी सम्राटों की आज्ञा से वहाँ उनका अनुवाद किया जाता था। यही कारण है कि कुछ पुस्तकें भारतवर्ष में तो नहीं मिलती परन्तु उनके अनुवाद चीन में आज भी प्राप्त होते हैं। ईसा से दो सदी पूर्व से लेकर चीन का जो इतिहास लिखा जाता रहा है, उससे भी भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ता है, क्योंकि तब से दोनों महान देशों में संस्कृति का सन्वन्ध निरन्तर बना रहा।

अलबरूनी—महमूद के साथ अलबरूनी नाम का एक विद्वान मुसलमान लेखक भी भारतवर्ष में आया था। उसने तहकीक-हिन्द (भारत सन्वन्धी अन्वेषण) नाम से एक पुस्तक लिखी थी, जो अभी तक प्राप्त होती है। अलबरूनी ने भारतीय साहित्य का गहरा अनुशीलन किया और यहाँ की अवस्थाओं को अपनी

धोंखों से देग कर वैज्ञानिक ढग पर गढ़ उपरुं क पुष्पक लिगी ।
दसवीं मरी ईसवी के अन्त में भारत-गंग की जो आन्तरिक रूसा
थी, उस पर अलखरुनी की पुष्पक से गयेष्ट प्रकाश पड़ता है ।
अलखरुनी से बहुत समय पूरे सुनेमान सोदागर नाम का एक
अरबी व्यापारी इस देश में आया था । उमने जो कुछ लिगा था,
उससे पश्चिमी भारत के तत्कालीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश
पड़ता है, परन्तु इस ओर ऐतिहासिकों का ध्यान विशेष रूप से
अभी तक आकृष्ट नहीं हुआ ।

भारतीय सभ्यता का विदेशो में प्रसार किस तरह हुआ, इस
सम्बन्ध में विदेशी लेखों द्वारा बहुत कुछ ज्ञात होता है । जावा,
श्याम, रूमेर, चम्पा आदि प्राचीन भारतीय उपनिवेशों में,
संस्कृत तथा स्थानीय भाषाओं में अनेक बहुमूल्य शिला-लेख प्राप्त
हुए हैं; इनके अतिरिक्त उन सुदूर देशों में भारतीय कला के ढंग
पर निर्माण किए गए अनेक बड़े-बड़े मन्दिर तथा प्राचीन भवनों
के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं, इन सब से भारतीय सभ्यता के
विदेशों में प्रसार का इतिहास काफ़ी विस्तार तथा प्रामाणिकता के
साथ जाना जा सकता है ।

पिछले दिनों से तिब्बत से भी इस तरह के अनेक लेख तथा
पुस्तकें मिलनी शुरू हुई हैं, जिनसे भारतीय इतिहास के सम्बन्ध
में काफ़ी कुछ ज्ञात हो सकता है । परन्तु इस दिशा में विशेष प्रयत्न
अभी तक नहीं किया गया ।

प्राचीन भारतीय इतिहास की वर्तमान दशा

पिछले सौ सालों से सैकड़ों यूरोपियन, अमेरिकन तथा भार-

काल के सम्बन्ध में बहुत अधिक। इस का परिणाम यह हुआ है कि आज जो इतिहास तैयार हो पाया है उसमें असमानता बहुत अधिक आ गई है। दूसरे शब्दों में भारतीय इतिहास के किसी-किसी कालरूपी मैदान को अन्वेषण द्वारा बहुत गहराई से खोद डाला गया है और किसी-किसी जगह उसे सिर्फ खुरपी से छूआ भर ही गया है। अभी तक यह असम्भव है कि भारतवर्ष का इतिहास वास्तविक तथ्यों के अनुपात से लिखा जा सके, क्योंकि सम्पूर्ण वास्तविकता ही अभी तक ज्ञात नहीं हो सकी।

बहुत से ऐतिहासिक अन्वेषण अभी तक पुस्तकों के रूप में भी नहीं आए। अभी तक वे केवल सामयिक रिसर्च पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए हैं।

पिछले दिनों प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण के लिए कितना गहरा और कितना सफल प्रयत्न किया गया है, यह बात एक ही उदाहरण से भली प्रकार जानी जा सकती है। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में ऐतिहासिक एलफिन्स्टन ने लिखा है कि भारतीय इतिहास में सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व की घटनाओं के सम्बन्ध में एक भी तिथि निश्चित कर सकना और इस देश पर मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व की घटनाओं का सम्बद्ध वर्णन कर सकना सम्भव ही नहीं है। एलफिन्स्टन के समय में सम्भवतः उसकी यह स्थापना ठीक थी। परन्तु आज यह बात नहीं रही। आज हमारे सम्मुख भारतीय इतिहास की इमारत का बहुत-सा मसाला उपस्थित है। पश्चिम की विश्लेषणात्मक पद्धति से इन पूर्वोक्त ऐतिहासिक स्रोतों की छानबीन करली गई है और

तीसरा अध्याय

आर्यों से पूर्व का भारत

इस देश में आर्यों के आगमन से पूर्व के इतिहास के सम्बन्ध में एक भी साहित्यिक रिकार्ड नहीं मिलता। प्राचीन काल के अन्वेषणों से इस लम्बे और अज्ञात काल के सम्बन्ध में थोड़े-बहुत तथ्य ज्ञात हुए हैं। इस युग का कोई सम्बद्ध इतिहास लिख सकना अभी तक सम्भव नहीं है, यद्यपि पुरातत्वज्ञों ने प्राचीन काल के जो अवशेष खोज निकाले हैं, उनकी मदद से तथा भारत की वर्तमान जंगली जातियों की प्रथाओं—जो प्राचीन काल से बिना किसी परिवर्तन के चली आ रही हैं—के आधार पर आर्यों से पूर्व के भारतीयों के सम्बन्ध में कुछ मनोरंजक बातें अवश्य कही जा सकती हैं। इन जंगली जातियों में से कुछ जातियाँ हिन्दुओं के संसर्ग से अपेक्षाकृत अधिक सम्यक् बन गई हैं, यथा राजपूताने के भील, परन्तु अनेक जातियों में, यथा टोडा और गोंड आदि में, अभी तक कोई परिवर्तन नहीं आया। ये लोग आज तक भी उसी तरह रहते हैं, जिस तरह उनके पूर्वज आज से हजारों साल पूर्व रहते थे। उसी तरह के औजारों को काम में लाते हैं, उसी तरह धनुष बाण से शिकार करते हैं और उसी तरह के धार्मिक मन्तव्यों पर विश्वास करते हैं।

हथियार पाषाणयुग की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं। इनका स्थान अधिकतर दक्षिण भारत था।

लोहयुग के निवासी अपने पूर्व निवासियों से अधिक सम्य और उन्नत थे। ये लोग जानवर पालते थे, खेती वाढ़ी करते थे, मिट्टी पक्का कर बरतन बनाना जानते थे और अपने मुर्दों को गाढ़ कर उन पर कवचों भी बनाते थे। युक्त प्रान्त के मिर्जापुर जिले में नवपाषाणयुग की कुछ कवचें मिली हैं। मालूम होता है कि भारत में मुर्दों को जलाने की प्रथा का प्रारम्भ आर्यों ने किया था।

ये लोहयुग के निवासी धीरे-धीरे धातुओं का प्रयोग करना भी सीख गए। निस्सन्देह इस बात में बहुत अधिक समय लगा होगा और बहुत समय तक पत्थर, मिट्टी और धातुओं का प्रयोग एक साथ जारी रहा होगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि धातुओं के प्रारम्भिक हथियारों की शकल-सूरत पत्थर के हथियारों से मिलती है। भारत में जो प्राचीन कवचें मिली हैं, उनमें अधिकांश लोहयुग की ही हैं। इन कवचों में लोहे के औत्तार काशी संख्या में मिलते हैं। यूरोप और एशिया - दोनों महाद्वीपों में ही लोहयुग के अवशेष उन्हीं स्थानों के आस-पास मिलते हैं, जहाँ लोहे की कानें हैं। धातुओं में सब से पूर्व सोने का प्रयोग शुरू हुआ। निजाम राज्य के मास्की नामक स्थान पर लोहयुग के निवासियों के अवशेष मिले हैं। प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत में पाषाणयुग के बाद लोहयुग का प्रारम्भ हो गया और उत्तर भारत में लोहयुग से पूर्व ताम्रयुग भी आया। यूरोप की तरह यहाँ लोहयुग से पूर्व कासी युग नहीं आया।

द्राविड—इतिहास के प्रारम्भ ही से इस देश में आक्रान्ताओं



घह अपनी माता के पास ही रहती थी। सन्तान को अपने पिता के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात भी न होता था। उन के ग्रामों की प्रथाएँ निश्चित थीं। द्राविड़ लोगों की ये संस्थाएँ इस देश में आर्यों के आगमन के बाद भी बनी रहीं।

द्राविड़ लोगों ने बहुत पहले ही से एक विशेष सभ्यता का विकास कर लिया था। उन में वर्णव्यवस्था नहीं थी। उन के धर्म को एक तरह से प्रेत पूजा कहा जा सकता है। पर प्रेत पूजा प्रारम्भिक असभ्य निवासियों की धार्मिक प्रथाओं से बहुत अधिक उन्नत रूप में थीं। हिन्दू धर्म के विकास में पूजा की इस विधि ने भी अपना स्थान बना लिया। उस समय सम्पन्न नगर भी थे। कई तरह के भोग के पदार्थ भी थे। भारत में प्रकृति ने द्राविड़ लोगों को सोना, मोती आदि बहुमूल्य पदार्थ काफ़ी तादाद में, बिना किसी प्रयास के ही दे दिए थे, अतः वे सुदूर देशों के साथ इन चीज़ों का व्यापार भी करते थे। उनमें अनेक विकसित भाषाएँ भी प्रचलित थीं। इस महान जाति का प्राचीन इतिहास जानने के लिए अभी पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में बहुत कुछ करना अभी तक बाकी है।

आर्यों के साथ संघर्ष—जब आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया, तो द्राविड़ लोगो ने भरसक उनका मुकाबला किया। यद्यपि द्राविड़ लोग आर्यों की अपेक्षा शरीर से कुछ कमजोर थे, परन्तु मुकाबले में वे आर्यों से कुछ कम नहीं थे। बहुत समय तक इन दोनों जातियों में भीषण संघर्ष चलता रहा और बहुत देर के बाद ही आर्य लोग इस देश में अपने कदम जमा सके। द्राविड़ लोगो ने अन्त में आर्य धर्म को स्वीकार कर लिया, परन्तु उन्होंने

अपनी भाषा तथा अपने रीति रिवाजों को सुरक्षित बनाए रखा। इसमें सन्देह नहीं कि द्राविड़ सभ्यता का आर्य-सभ्यता पर काफ़ी गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीय आर्यों की भाषा पर भी द्राविड़ भाषा का प्रभाव स्पष्टरूप से दिखाई देता है। दक्षिण में आज तक भी द्राविड़ लोगों का प्राधान्य है, इस से यह प्रतीत होता है कि कोई भी आर्य जाति सम्पूर्ण रूप से दक्षिण में जाकर आवास नहीं हुई। द्राविड़ लोग थोड़ी बहुत संख्या में, उत्तरभारत में भी अब तक भी पाए जाते हैं। इस दशा में अभी तक बहुत कम तथ्य ज्ञात हो सके हैं कि आर्यों की संस्थाओं को द्राविड़ों ने किस तरह पूर्णरूप से अपना लिया।

सिन्ध की घाटी की सन्धता—आज फल पुरातत्व विभाग के अन्वेषणों का कार्य महेंजोदाड़ो (सिन्ध) तथा हड़प्पा (पंजाब) में जोरों पर है। हड़प्पा में अनेक मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, जिन पर किसी अज्ञात भाषा में कुछ लिखा हुआ है। यह भाषा अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी, इस लिए इन मुद्राओं से अभी तक कोई विशेष लाभ नहीं उठाया जा सका।

पिछले कुछ वर्षों में इन दोनों स्थानों से प्राचीन शहरों के खडरात, जमीन के नीचे से निकलने शुरू हुए हैं। इनकी खोज से भारतीय पुरातत्व में क्रांति-सी खड़ी हो गई है। बड़ी-बड़ी इमारतें खोद निकाली गई हैं। बहुत सी मुद्राएँ आभूषण, परिष्कृत पक्क बरतन और इसी तरह की बहुत श्रेष्ठ कांठि की अन्य भी बहुत-सी चीज़ें प्राप्त हुई हैं। इस सम्बन्ध में सभी पुरातत्वज्ञ सहमत हैं कि ये नगर ईसा से कम से कम ३००० साल पुराने हैं। इस तरह ये अवशेष भारत के सब से अधिक प्राची

अवशेष हैं। इनसे यह सिद्ध हो गया है कि उस सुदूर काल में सिन्ध की घाटी बहुत ही समृद्ध और उन्नत दशा में थी। इस घाटी के निवासी बहुत सम्य थे। निस्सन्देह सिन्ध नदी की घाटी की इस समुन्नत सभ्यता ने प्राचीन भारतीय इतिहास में एक गरिमा-शाली नया अध्याय और बढ़ा दिया है। शुरु-शुरु में कुछ लोगों का ख्याल था कि सिन्ध नदी के इन अवशेषों का सम्बन्ध सुमेरियन सभ्यता के साथ है। परन्तु अब इस सम्बन्ध में निश्चय के साथ कुछ भी कह सकना कठिन है। भारत के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में प्रति वर्ष नई-नई सामग्री उपलब्ध हो रही है; परन्तु अभी तक उस सामग्री का समन्वयात्मक उपयोग करना सम्भव नहीं है।

साथ ही रहते होंगे। वे लोग कब और कहाँ रहते थे, इस सम्बन्ध में निश्चय के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अधिकांश ऐतिहासिकों की राय है कि वे लोग मध्य-एशिया में रहते थे। वहाँ ही वे सभ्यता का विकास कर रहे थे। उनकी भाषा वैदिक भाषा से मिलती थी।

आर्य—क्रमशः इन भारतीय-यूरोपियनों की संख्या बढ़ती गई और उनका आदिस्थान उनके लिए छोटा सिद्ध होने लगा। तब उनमें से बहुत से लोग, दुकड़ियों में विभक्त होकर, एशिया और यूरोप के उपजाऊ स्थानों पर जाकर आवाहू होने लगे। इनमें से पूर्वोक्त शाखा के लोग 'आर्य' नाम से प्रसिद्ध हैं। वे बहुत समय तक एक साथ रहे और तब स्वभावतः उन में एक ही भाषा रही। जब इन आर्यों का और भी अधिक प्रसार हुआ तो उन की एक शाखा फारस में चली गई और दूसरी शाखा हिन्दूकुश पर्वत की राह से पंजाब में चली आई। यहाँ उनका आदिम निवासियों से संघर्ष शुरू हुआ। आर्य लोग यद्यपि संख्या में कम थे, तथापि वे अधिक मजबूत और युद्ध-विद्या में अधिक निपुण थे। उनके हथियार अधिक घातक थे और उनके पास घोड़े और रथ भी विद्यमान थे। बहुत से भयंकर संघर्षों के बाद आर्यों ने पंजाब के आदिम निवासियों पर विजय पाई। ये आर्य लोग पंजाब में स्थिर रूप से बसना चाहते थे, परन्तु उधर से नए आर्य पंजाब में आ पहुँचे। तब उन्हें जगह देने के लिए ये लोग और भी आगे, गंगा की घाटी में बढ़ गए।

भारतवर्ष को आर्यों ने आसानी से विजय नहीं किया। इसके लिए उन्हें बहुत समय तक, बड़े धैर्यपूर्वक, भयंकर संघर्ष

तथा सजीव बना देता है । आर्यों की नकल इतनी ही मौलिक होती थी ।

वैदिक-साहित्य

प्राचीन भारतीय आर्यों के सम्बन्ध में हमें जो कुछ भी ज्ञान है, उसका एक मात्र आधार वेद हैं । वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—'जानना' । वेद का अर्थ है 'ज्ञान' । हिन्दुओं की दृष्टि में वेद पवित्र ज्ञान का भण्डार है । वैदिक युग के सम्बन्ध में अन्य कोई स्रोत न मिलने पर भी स्वयं वेद ही इतने प्रामाणिक स्रोत हैं कि वह अपने युग को अच्छी तरह प्रकाशमान कर रहे हैं । वेद भारतीय आर्यों का सबसे प्राचीन साहित्य है । संसार के साहित्य में उनका स्थान बहुत उच्च है । घनों का इतिहास और भाषाओं के अध्ययन में वेदों से अमूल्य सहायता प्राप्त होती है । भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के लिए भी वेद बहुमूल्य हैं । उनसे हिन्दूधर्म के स्रोत तथा प्राचीन संस्थाओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान होता है । हिन्दू लोग वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं । उनका विश्वास है कि वे नित्य हैं । इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय सभ्यता का विकास जिन आधारों पर हुआ, वे प्रायः सब वेद में पाए जाते हैं ।

वेद' शब्द से ही यह भाव प्रकट होता है कि उनमें बहुत समय का थोर बड़ा विस्तृत ज्ञानमय साहित्य संग्रहित है । यह साहित्य सदियाँ में बना और वैदिक साहित्य भी धीरे-धीरे बढ़ता गया । वैदिक साहित्य के मुख्यतः ६ भाग किए जा सकते हैं—

१. साम ऋग्वेद चारों मूल वेदों—ऋग्वेद, यजु, साम और अथर्व—के मूल भाग का पहिला या मन्त्रभाग कहा जाता है ।

के अतिरिक्त अन्य भी अनेक सम्प्रदायों तथा महापुरुषों पर उपनिषदों का गहरा प्रभाव पड़ा है। ये पिछले वैदिक युग की कृति हैं। इस सम्बन्ध में आगे चल कर लिखा जायगा। गीता की ऊँची व्यावहारिक फिलासफी भी उपनिषदों पर आश्रित है।

५, सूत्र ग्रन्थ—ब्राह्मण ग्रन्थों के लम्बे-चौड़े साहित्य को संक्षिप्त रूप देने के लिए सूत्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ। सूत्र को एक तरह का 'फारमूला' कह सकते हैं। वे इतने संक्षिप्त हैं, बिना व्याख्या के उन्हें समझा ही नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में वे बड़े-बड़े अध्यायों के शीर्षकों के समान हैं। एक युग में सूत्र ग्रन्थों की महत्ता इतनी बढ़ गई कि विद्वानों का सम्पूर्ण ध्यान 'संक्षेप' की ओर ही चला गया। उस समय यह कहावत प्रसिद्ध हो गई थी कि सिर्फ एक मात्रा की कमी करने में सफलता प्राप्त करने पर वैयाकरणों को पुत्र-प्राप्ति के समान प्रसन्नता होती है। इन सूत्र ग्रन्थों के तीन भाग हैं— (क) श्रौत—बड़े-बड़े यज्ञों की क्रियाओं के सम्बन्ध में (ख) गृह्य—परिवार के क्रियाकलापों के सम्बन्ध में (ग) धर्म—सामाजिक और स्थानीय रीतिरिवाजों के सम्बन्ध में। इन्हीं धर्मसूत्रों के आधार पर, बाद में राजकीय कानूनों का निर्माण किया गया।

६ वेदांग और उपवेद—वैदिक साहित्य के दो पूरक भागों का नाम वेदांग और उपवेद है। वेदांगों के ६ भाग हैं। वेदों को पढ़ने के लिए वेदांग का पढ़ना आवश्यक है। वेदांग हैं—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प।

चार उपवेद हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और शिल्प वेद। इन में क्रमशः चिकित्सा, युद्ध विद्या, संगीत और शिल्प का







पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। शतपथ के अन्त में बृहदारण्यक उपनिषद् दी गई है।

अथर्ववेद—के दो मुख्य भाग हैं। सम्पूर्णा अथर्ववेद २० काण्डों में विभक्त है। ख्याल है कि इनमें से अन्तिम दो वाद में बने। अथर्ववेद में जादू से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्र भी हैं। कुछ मन्त्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। इस वेद में राजनीतिक और दार्शनिक विचारों का अनुशीलन भी है। कुछ मन्त्रों में प्राग्-ऐतिहासिक काल की प्रथाओं की झलक भी मिलती है। भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के अध्ययन में अथर्ववेद की महत्ता भी बहुत अधिक है।

वैदिक काल का तिथिक्रम

भारतीय इतिहास की समस्याओं में वेद की तिथि निश्चित करना एक बहुत बड़ी समस्या है। वेद भारतीय साहित्य का सः से प्राचीन पुस्तक है, वह भारतीय आर्यों के बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास का स्रोत है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के निर्माण काल के सम्बन्ध में प्रामाणिक ऐतिहासिकों में भारी मतभेद पाया जाता है। यह भेद कुछ वर्षों या कुछ सदियों का नहीं, अपितु हजारों वर्षों का है। यहाँ किसी एक मत की पुष्टि किए बिना विभिन्न मतों का निर्देश कर देना ही पर्याप्त है—

मैक्समूलर का मत—इस समस्या को हल करने का प्रयत्न सब से पहिले मैक्समूलर ने किया। उसका कथन है कि वैदिक साहित्य का अधिकांश भाग प्राग्वैदिक कालीन है। अर्थात् ईसा से ६०० साल पहले तक। मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य को ३ भागों

•वाँटा—

६००० वर्ष ईसापूर्व निश्चित क्रिया। तिलक और जैकोबी के इन मन्तव्यों की पुरातत्त्वज्ञों ने कड़ी आलोचना की। इसमें सन्देह नहीं कि इन दोनों स्थापनाओं में भी कल्पना को बहुत अधिक स्थान दिया गया है।

ऐतिहासिक युक्तियाँ—ओल्डन वर्ग, मैकडानल और कीय ने मैक्समूलर की कल्पना को उसी प्रकार स्वीकार कर लिया था, परन्तु प्रोफ़ेसर विण्टरनीटज़ ने इस समस्या पर पुनः स्वतन्त्रता पूर्वक विचार किया। वह इस परिणाम पर पहुँचे कि वेदों के तिथि-क्रम के सम्बन्ध में मैक्समूलर की अपेक्षा जैकोबी और तिलक का मत अधिक प्रमाणासिद्ध प्रतीत होता है। सम्पूर्णा वैदिक साहित्य में विचारों और संस्थाओं का विकास स्पष्टरूप से प्रतीत होता है, विण्टरनीटज़ के अनुसार वह विकास ७०० वर्षों में होना सम्भव नहीं है। जितना वैदिक साहित्य प्राप्त होता है, वह बहुत विस्तृत है, परन्तु वह भी सम्पूर्णा नहीं है। यह स्पष्टरूप से प्रतीत होता है कि बहुत-सा वैदिक साहित्य आज उपलब्ध नहीं होता। ऋग्वेद अन्य वेदों और ब्राह्मणों से बहुत प्राचीन है। वह स्वयं भी एक ही समय में और एक साथ तैयार नहीं हुआ। उसमें विभिन्न काल की और विभिन्न कवियों द्वारा बनाई वैदिक कविताओं का संग्रह है। ऋग्वेद में अनेक मन्त्र अनेक वार आए हैं, यह बात स्पष्टरूप से सिद्ध करती है कि जिन दिनों ऋग्वेद का निर्माण हो रहा था, उन दिनों बहुत से मन्त्र आर्यों में इस टंग के भी प्रचलित थे जिन पर किसी एक का अधिकार नहीं था, जो चाहता था, उन्हे इस्तेमाल कर सकता था। अर्थात् इस सम्बन्ध में उन दिनों के आर्यों में जो एक किसिम का महान साहित्यिक विकास

है। इस पर साक्षी के रूप में जिन देवताओं का नाम दिया गया है, उनमें मित्र, वरुण, इन्द्र, नासत्य आदि वैदिक देवताओं का उल्लेख भी है। कुछ पुरातत्वज्ञों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है कि सम्भवतः ये देवता ईरानी देवता ही हों और ये लेख उस समय के हों जब ईरानी और भारतीय आर्य, एशिया-माइनर के आसपास, एक ही साथ रहा करते थे। परन्तु यह सिद्ध करना असम्भव है। वास्तव में ये नाम वैदिक देवताओं के ही हैं, यह कल्पना बिलकुल दुरुद्ध है कि ईसा से १५०० साल पहले कुछ योद्धा आर्यों का गिरोह सुदूर मिलानी तक जा पहुँचा हो। इस लेख से वैदिक देवताओं के सम्बन्ध में यह भली प्रकार सिद्ध हो गया है कि वे कम से कम ईसा से १५०० वर्ष पुराने जरूर हैं।

भाषा का आधार—प्राचीन फ़ारसी और अवस्ता (ज़िन्दा-वस्ता) की भाषा वैदिक भाषा से मिलती हैं। अवस्ता का निर्माण-काल तो ज्ञात नहीं है, परन्तु प्राचीन फ़ारसी ६०० वर्ष ईसापूर्व से अधिक प्राचीन नहीं है। अनेक भाषाविज्ञों का कहना है कि प्राचीन फ़ारसी और वैदिक भाषा में साम्य होने के कारण वेद भी बहुत अधिक प्राचीन नहीं हो सकते। भाषाएँ क्रमशः बदलती तो रहती हैं, परन्तु कुछ में परिवर्तन ज़रा शीघ्रता से आता है और कुछ में बहुत देर से। इस लिए भाषा के परिवर्तन के आधार पर कोई भी परिणाम निकलना खतरे से खाली नहीं होता। फिर, प्राचीन फ़ारसी और वैदिक भाषा में साम्य होते हुए भी वह साम्य इतना अधिक नहीं है, जितना उसे समझा जाने लगा है। इन दोनों भाषाओं के साम्य से सिर्फ़ इतना ही सिद्ध किया

कृष्ण ही छोटि जय में पव रही है।

कुछ नदियाँ, जैसे पश्चिम में कुईम और पूर्व में मरनना, अब गाय है। एक आदि कुछ नदियाँ अब विद्यमान ही नहीं रही। सकना आसल कलु नहीं है। कुछ नदियाँ का नाम ही बदल आगया है कि नदी सुक के अघार पर काँडे नकशा बेघार कर अब उक इन नदियों का भौगोलिक अवस्थिति में इनका अन्तर ही है। नदी सुक में १४ नदियों का नाम है। वव से भाग—काविस, खाल, कुईम, और गोमज नदियों के पास—वक गंगा नदी तक भी था। कुछ जल अमी विन्यु नदी के पश्चिमी वव से यह भी बाल होना है कि आर्वा का बिलार पमुना और निवावत्यान की कल्पना करने में बड़ी कष्टपला मिलती है। में विन नदियों का वर्णन है, उनसे प्राचीन भारतीय आर्वा के नदी की पाटी (पंजाब) आर्वा का निवावत्यान था। नदी सुक भारतीय आर्वा का निवाव त्यान—वैदिक युग में विन्यु पटना है।

है और राजाओं के युद्ध को बाल भी एक ऐतिहासिक के भाल, सुदाल, आमदन्व आदि राजाओं के नाम ऐतिहासिक कलु बना हुआ है। तथापि इस में सन्देह नहीं कि वेदी कार्या वव युग का इतिहास लिख सकना अभी तक असम्भव काशी मसाला मौजूद है। परन्तु विधिकम के निवाव आभव के हमार पास अनेक राजाओं के और जातियों के नामों के रूप में वैदिक युग का राजनीतिक इतिहास निर्माया करने के लिए

अन्य कुर्वा के नाम भी उपलब्ध होते हैं।

कुल साहित्य है। बड़ी भल, मन्व, सिध, विरु आदि कुछ

वैदिक काल

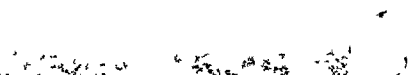
"इस विश्व में जो कुछ बल और अजब है, जो कुछ प्रकट
 न किया हुआ है, उस सब को देवता देवता है। जहाँ कोई भी व्यक्ति
 बल कर आपस में कोई बलाह करती है और सम्बन्ध है कि यहाँ
 निकलने से ही है, वे यहाँ करते हैं। वीसरा व्यक्ति राजा बन्दा
 यहाँ आर्य यौवर्द्ध होता है। वह सब कुछ सिखा है, सब कुछ
 देता और सब कुछ जानता है। उसके गुणपर आसमानपर से
 प्राप्त है। अपनी हजारी अर्थात् से वे दुनिया भर के विप-विप से
 कौनों की देव रहे।"

इस के बाद आधुना मुक्त होता है—

'ब्रह्मण्य, वे जो तेरे हजारी-जाती वह-वह आज सब आगे
 निकल हुए हैं, इन से वे जो उदरपुरा की ही वाय, सभा की गयी।'
 'देवी में 'अप' की करणना एक बलिब और सुन्दरान देवी
 कल्प में की गई है। वहाँ की स्थिति में देवी के गुण से सदा का
 निर्माण हुआ है। उसी से सम्बन्ध रखते बाजे इस मन्त्री की भाव
 इस प्रकार है—

'सुन्दर देवी, तुम अपनी पुण्यवन्ता के सम्बन्ध में,
 भक्तियों लाती, जहाँ वहाँ और सुन्दरान मन्त्री के साथ बली
 मयुरता से सुकरती है।'
 'एक मन्त्रीज और विजयी मन्त्री बनेक रही है। बन्त्रीज
 कर्ण में उल्लेख अपना सुन्दर मन्त्री लक्ष्मण है। बन्त्रीज
 दुस मन्त्री की वह अपना सुन्दरान मन्त्रीज नाम मन्त्री से मिली
 रही है।'

यह जगत् में उल्लेख मन्त्रीज मन्त्रीज मन्त्रीज मन्त्रीज
 नाम बना दिया है। उल्लेख मन्त्रीज मन्त्रीज मन्त्रीज मन्त्रीज



नगर, जो वर्तमान इलाहाबाद के आसपास था, बना। पुरुरव वंश के अनेक राजकुमारों ने कान्यकुब्ज (कन्नौज), वाराणसी (बनारस) आदि स्थानों पर नए राज्यों का निर्माण भी किया। पुरुरव वंश का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा ययाति हुआ। अपने राज्य का सूत्र विस्तार कर लेने के बाद उसने इसे अपने पाँचों पुत्रों में बराबर-बराबर बाँट दिया। ययाति के ये पाँचों पुत्र योग्य सिद्ध हुए, और उन सब ने पाँच सुप्रसिद्ध राजवंशों की नींव डाली। इनमें से पुरु और यदु, क्रमशः पौरव और यादव वंश की नींव डालने के कारण, विशेष प्रसिद्ध हैं। पौरव वंश के राजाओं में दुष्यन्त, भरत, हस्तिन—हस्तिनापुर का प्रतिष्ठापक—कुरु—कुरुक्षेत्र का प्रतिष्ठापक, शान्तनु और दुर्योधन विशेष प्रसिद्ध हैं। कुरु के समय से पौरव वंश, कौरव वंश बनाने लगा। राजा दुर्योधन महाभारत के सुप्रसिद्ध महायुद्ध का एक पक्ष का मुखिया था। महाभारत की घटनाएँ अब ऐतिहासिक स्वीकार की जाने लगी हैं।

महाभारत के युद्ध के बाद पाण्डव वंश भारतवर्ष भर में सब से अधिक शक्तिशाली बन गया। अर्जुन के वंशधर बहुत समय तक राज्य करते रहे। कालान्तर में हस्तिनापुर एक भयंकर बाढ़ से नष्ट हो गया और तब पाण्डव वंश की राजधानी कौशाम्बी नगरी बनी। क्रमशः इस वंश की शक्ति क्षीय होती गई। सात सदी ईसा-पूर्व का राजा उदयन पाण्डव वंश का ही वंशधर था।

मगध का जरासन्ध—पुरुरव वंश की एक शाखा गिरिज (राजगृह) का बृहद्रथ वंश था। राजा कुरु ने इस वंश की स्थापना की थी। बृहद्रथ वंश का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा जरा-

को नीचा दिखाया । इसके बाद हैहय वंश की शक्ति क्षीय हो गई और कालान्तर में अयोध्या के राजा सगर ने हैहय वंश का अन्त कर दिया ।

अन्य राज्य—प्राचीन भारत के कतिपय अन्य राजवंश निम्न लिखित थे—तुर्वश, द्रुह्यु और अणु । अणु वंश पूर्वीय प्रदेश पर राज्य करता था । बाद में उसके पांच भाग हो गए—अंग, वंग, कर्लिंग, सुम्ह और पुण्ड्र । इनके अतिरिक्त मत्स्य, कुष्य और काशी वंशों का नाम भी यहां दिया जा सकता है । सुप्रसिद्ध राजा सुदास का जन्म उत्तर पांचाल वंश में हुआ था । सोमाप्रान्त के राजवंशों में तक्षशिला का नाग वंश विशेष शक्तिशाली प्रतीत होता है ।

प्रसिद्ध नगर—मध्ययुग के अयोध्या, मिथिला, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर, मथुरा, कान्यकुब्ज, उज्जैन, तक्षशिला आदि नगर इस युग में भी सुप्रसिद्ध हो चुके थे । आर्य काल के नगर बढ़े समृद्ध थे साथ ही उन दिनों गांवों की स्वाधीनता भी पूर्ण रूप से अबाधित थी । सड़को तथा पानी के मार्गों द्वारा एक नगर से दूसरे नगर में आवागमन होता था । उनका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा ।

इन शक्तिशाली राज्यों के अतिरिक्त पूर्व और पश्चिम में छोटे-छोटे स्वाधीन गणतन्त्र राज्यों की सत्ता भी थी । आर्य राजनीति में इन गणराज्यों का भी बहुत महत्वपूर्ण भाग था ।

यह प्रतीत होता है कि उस युग में भी भारतवर्ष का व्यापार अन्य देशों के साथ होता था । पश्चिम भारत का सब से बड़ा

,

1

नेति !!' अर्थात् 'वद इम तरह नही हे ! वद इस तरह भी नही है !!'

उपनिषद् युग के बाद महाभारत और पुराणों का युग शुरू होता है। इस युग को योग (तपस्या) का युग भी कह सकते हैं।

योगी और ब्राह्मण ये दोनों प्राचीन भारत के बौद्धिक तथा धार्मिक जीवन के विभिन्न प्रतिनिधि थे। इनका आचारशास्त्र पृथक् पृथक् था। इन दोनों के साहित्यों में स्पष्ट भेद दिखाई देता है। ब्राह्मण साहित्य का आधार वैदिक गाथाएँ नहीं, अपितु तत्कालीन जन साधारण में प्रचलित दन्त कथाएँ ही थी। तपस्वी लोग आचार की पवित्रता पर विशेष बल देते थे और वे संन्यासी को, उसके सर्वस्व त्याग के कारण, सब से बड़ा पद देते थे। तपस्वियों के साहित्य में जिस पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त पर बल दिया गया है, उसमें निराशावाद को स्थान नहीं है। वे वर्ण का बन्धन नहीं मानते थे। तपस्वी लोगों के जिन आदर्शों का महाभारत, पुराण तथा प्रारम्भिक बौद्ध और जैन ग्रन्थों में पिता पुत्र के सम्वाद के रूप में सुन्दर वर्णन पाया जाता है, वे आदर्श ब्राह्मणों की आश्रम व्यवस्था से बिलकुल भिन्न हैं।

महाभारत में योग (कर्म) के सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रायः अत्राह्मण लोगों के मुँह से ही कराया गया है। यह बात अचानक नहीं हुई। विदुर का जन्म एक दासी से हुआ था, महाभारत में वर्णित कर्म और योग के सिद्धान्तों का काफ़ी बड़ा भाग उसी से सम्बद्ध है। चीनी, फारसी और यूरोपियन साहित्य में जिस नुब्य और कूँए की घटना का उल्लेख है, वह सब से पहले विदुर : 1 महाभारत में कहलम्हई गई है। नीची जाति के महापुरुषों ने गमय जीवन के इस तप-सिद्धान्त का विशेष प्रतिपादन किया।

प्राचीन भारत

अनादि है। एक जन्म का दूसरे जन्म पर प्रभाव पड़ता है और दूसरे का अगले जन्म पर। प्राणमात्र की सम्पूर्ण योनियों, जहाँ भी प्राण है, इस पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त द्वारा एक शृंखला में बँध जाती हैं। अगले जन्मों के भविष्य का निर्णय हमारे आज के कर्म करते हैं। पूर्ण ध्यानन्द पृथ्वी या स्काई में नहीं, वह मुक्ति में ही है। निर्वाण, मुक्ति आदि इसी मोक्ष के अनेक नाम हैं। आजकल के सम्पूर्ण हिन्दु-मतां में भी कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त की बड़ी महत्ता है।

वर्ण व्यवस्था का प्रादुर्भाव

वर्तमान हिन्दू धर्म वर्ण व्यवस्था पर आश्रित है। वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भ हुए कम से कम ३००० वर्ष हुए हैं। यह एक बहुत ही गुथीली व्यवस्था है। इसने वर्तमान हिन्दुओं को करीब ३००० भागों में विभक्त कर रक्खा है। वर्ण व्यवस्था के विकास को समझने के लिए हमें प्राचीन वैदिक युग की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करना चाहिए।

जातियों की समस्या—जब आर्य लोगों ने अपनी सैनिक शक्ति से इस देश के अधिकांश भाग पर प्रभुत्व कायम कर लिया, तब उनके सामने सब से बड़ी समस्या यह आ खड़ी हुई कि वे अपनी पृथक् सत्ता किस तरह कायम रख सकते हैं। आर्यों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम थी। उनके मुकाबिले में इस देश के मूल निवासी—मगोल और द्राविड लोगो—की संख्या बहुत अधिक थी। इन परिस्थितियों में आर्य विचारकों ने, कोई ऐसा उपाय ढूँढ़ निकालने का सिरतोड़ प्रयत्न किया जिससे भारतवर्ष के मूल निवासियों को अपने सामाजिक संगठन का भाग भी बना

साथ देव पूजा ने भी अपना स्थान बना लिया। धीरे-धीरे विजित और विजेता में कोई भेद नहीं रह गया। विजित लोगों की संस्कृति में से सम्पूर्णा अच्छी और सही बातों को लेकर आर्य संस्कृति हिन्दू धर्म के रूप में और भी विशाल और समन्वयात्मक संस्कृति बन गई। इस व्यापक धार्मिक और सामाजिक संगठन में जंगली जातियों के अनवड विश्वासों और रीति रिवाजों को भी बरदाश्त किया गया। किसी पर कोई ज़बरदस्ती नहीं की गई, यद्यपि अवनत श्रेणियों के सामने भी नई भावनाएँ स्वयं ही उपस्थित हो गईं। कुछ ही समय के बाद नाम में परिवर्तन न आने पर भी प्राचीन अनार्य मन्तव्यों का कायापलट हो गया। काली एक अनार्य देवी थी, शराब, माँस और हत्या में मस्त रहने वाली। वही काली देवी हिन्दू धर्म में दोषित होकर दयामयी काली माता बन गई। हिन्दू धर्म का आधार सहनशीलता और दूसरों के अस्तित्व को स्वीकार करना था। इसका परिणाम यह हुआ कि प्राचीन अवनत जातियों के अन्ध विश्वासों को भी हिन्दू धर्म में स्थान मिल गया, मगर उन जातियों के सामने हिन्दुत्व के उच्चतम धार्मिक आदर्श भी मौजूद रहे। इन आदर्शों की मौजूदगी में हिन्दुओं की अवनत श्रेणियाँ उन्नति के मार्ग का प्रकाश स्पष्टरूप में देखती रहीं। हिन्दुत्व में ज़बरदस्ती को स्थान नहीं है। हिन्दू धर्म का सिद्धान्त है कि किसी को सत्य का दर्शन पाशविक शक्ति की सहायता से नहीं करवाया जा सकता। हिन्दू धर्म का यह भी विश्वास नहीं कि मनुष्य मात्र को यन्त्र के समान एक ही ढंग से जीवन व्यतीत करना चाहिये और एक ही ढंग से भगवद्भक्ति करनी चाहिए। हिन्दू धर्म का यह भी सिद्धान्त



जब गुरु उसके कान में गायत्री मन्त्र का उपदेश करता था, तभी उस बालक में ब्राह्मणत्व का उदय स्वीकार किया जाता था। वास्तव में उनका सम्मान उनकी विद्वत्ता के आधार पर ही किया जाता था। मनु ने लिखा है कि 'जिस तरह लकड़ी का हाथी और चमड़े का बना हिरण्य सिर्फ नाम के ही हाथी तथा हिरण्य हैं, उसी तरह अविद्वान ब्राह्मण भी नाममात्र ही का ब्राह्मण है।' भारतीय ब्राह्मण कैथोलिक पादरियों अथवा मुसलमान मुल्लाओं के समान नहीं थे, जिनका काम एक विशेष प्रकार की व्यवस्था को कायम रखना था। यह भारतवर्ष का एक बौद्धिक कुलीनतन्त्र था, जिसका काम सब प्रकार के भारतीय विचारों का नेतृत्व करना था। अनेक ब्राह्मण प्रथम कोटि के योद्धा थे। महाभारत के समय प्रसिद्ध ब्राह्मण आचार्य द्रोण का आश्रम युद्ध विद्या तथा सैनिक शिक्षा देने के लिए इतना प्रसिद्ध था कि भारतवर्षके प्रमुख राजवंशों के राजकुमार वहाँ सैनिक शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से जाते थे।

क्षत्रियों का काम भी सिर्फ युद्ध करना ही नहीं था। वैदिक विचारों के विकासमें ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों ने भी बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। वैदिक युग के द्वितीयार्ध में क्षत्रियों ने भी आर्य साहित्य में एक नई लहर-सी चला दी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उपनिषदों की दार्शनिकता के महान आचार्य प्रायः क्षत्रिय ही थे।

वैदिक युग में शिल्पियों और कारीगरों का बड़ा सम्मान था। गाथा ग्रन्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्य युग में अनेक कारीगरों का सम्मान ब्राह्मणों के समान किया जाता था।

उपर्युक्त चारों वर्गों के अतिरिक्त एक पंचम वर्ग भी वैदिक

युग में स्वीकार किया जाता था। इन्हें 'सामान्य' या 'सूत' कहा जाता था। आर्य और अनार्य रुधिर के सम्मिश्रण से इस पञ्चम-वर्ण की उत्पत्ति होती थी। यह पञ्चम वर्ण भी आर्य वर्णव्यवस्था का ही एक भाग था।

वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भिक आधार क्रमशः अधिक-अधिक व्यापक होता चला गया। आर्य संस्कृति में मुख्य सिद्धान्त स्वीकार कर लेने पर अनार्य जातियों को भी आर्य सामाजिक सङ्गठन में सम्मिलित कर लिया जाता था और उनसे यह आशा भी नहीं की जाती थी कि वे अपनी प्रथाओं और विश्वासों को छोड़ दें।

परिवर्तनशील वर्ण—स्मृतिकार मनु का कथन है कि जन्म के समय सभी मनुष्य शूद्र होते हैं। परन्तु दीक्षापूर्वक उपनयन से वे द्विज बन जाते हैं। द्विज का अर्थ है दूसरी बार जन्म लेने वाला। यह दूसरा जन्म आध्यात्मिक होता है। 'मनुष्य अपने कर्मों से ही ब्राह्मण बनता है, एक चाण्डाल भी ब्राह्मण है यदि वह ब्राह्मणों के समान कार्य करता है।' आर्यों के अनेक ऋषियों का जन्म भी नीच कुलों में हुआ था। रघुहुल गुरु वसिष्ठ ऋषि का जन्म एक बैरवा के गर्भ से हुआ था। महाकवि ऋषिबर व्यास का जन्म एक मछिहारे की लड़की से और पाराशर का जन्म एक चारदाल कन्या से हुआ था। गर्ग, गृन्स्मद्, करव आदि अनेक जन्म के सत्रिय ब्राह्मणत्व को पाकर ऋषि बन गए। देवों की अनेक ऋषियों के मन्त्रकार सत्रिय थे। इनमें से देवाधि और विश्वामित्र आदि, जो जन्म के सत्रिय थे, बड़े-बड़े यज्ञों में पुरोहित का काम भी करते थे। व्यास का ही मन्त्र था, जन्म की नहीं। कालान्तर में वर्ण विभाग अनिवर्तन-शील बनता चला गया।

वर्षों में जाना असम्भव हो गया। जातियों की संख्या शीघ्रता से बढ़ती गई और कुछ ही समय में हिन्दू लोग हजारों पृथक्-पृथक् जातियों के रूप में बँट गए। जातियों को संख्या बढ़ाने के अनेक कारण थे। प्रत्येक गिरोइ और प्रत्येक धन्धे का सङ्गठन पृथक् जाति बन गया। कार्य-विभाग के आधार पर भी चमार, लोहार आदि इतनी जातियाँ बन गईं कि आज अनेक ऐतिहासिक इसी कार्य-विभाग को ही विभिन्न जातियों का मुख्य आधार मानने लगे हैं।

अनेक आदिम निवासी वंश आर्यों के संसर्ग में आकर विभिन्न जातियों के रूप में परिवर्तित हो गए। उदाहरण के लिये बहल के राजवंसों और मध्य भारत के गोड लोगों का नाम पेटा किया जा सकता है।

विदेशी आक्रान्ताओं ने नई जातियों का निर्माण किया। अनेक जातियों और वंशों के रुधिर के सम्मिश्रण से बहुत-सी नई जातियों का जन्म हो गया। एक जुदा जाति बनाने के लिये प्रथाअ, या काय का परिवर्तन अथवा नए धार्मिक विचारों का प्रहय ही पर्याप्त होता था। गुडगाबा और दिल्ली के गारिदा राज-पूत विधवा-विवाह करने लग अतः अन्य राजपूतों से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रह गया।

नए सम्प्रदायों से अनेक नई जातियों का जन्म हुआ। लिगा-यत, कदारपन्थी आदि जातियाँ इसी तरह के हैं। कुछ वंशों ने अपना निवास स्थान बदल लिया, इससे भी अनेक नई जातियाँ उत्पन्न हुईं यथा गोड ब्राह्मण आदि। ऊँची जाति के कोई व्यक्ति जब कोई भारी अपराध करता था, तब उस जाति से दहिष्टन कर

दिया जाता था, इन बहिष्कृतों से भी अनेक जातियों का प्रारम्भ हुआ। इन्हें प्रात्य कहा जाता था। स्मृतिकारों ने ब्राह्मण जातियों की लम्बी सूची दी है।

आजकल इस जात-पात का रूप बहुत ही अपरिवर्तनशील और कठोर है। हिन्दुओं की सैकड़ों विभिन्न जातियाँ अपनी-अपनी प्राचीन प्रथाओं की रक्षा करती आ रही हैं। इन जातियों में परस्पर खान-पान बहुत कम होता है। अन्तर्जातीय विवाह हिन्दू धर्म को सह्य नहीं है। प्रत्येक जाति की अपनी-अपनी प्रथाएँ हैं; और उन्हीं प्रथाओं की रक्षा में हिन्दुओं की सम्पूर्ण शक्ति व्यय हो रही है।

इस प्रचलित वर्ण-व्यवस्था से हिन्दू धर्म को सब से बड़ा लाभ यह हुआ है कि जहाँ एक ओर हिन्दू धर्म अधिक व्यापक होता चला गया है, वहाँ दूसरी ओर सदियों के उपद्रवों और लड़ाई झगड़ों के वातावरण में भी हिन्दुओं के सैकड़ों अपरिवर्तनशील वंशों और जातियों की प्रथाएँ विलकुल सुरक्षित रही हैं। वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण हिन्दू समाज एक शरीर है, और विभिन्न जातियाँ उस शरीर के विभिन्न अङ्ग हैं। प्रत्येक अङ्ग की अपनी-अपनी विशेषता और अपनी-अपनी उपयोगिता है। हिन्दुत्व में प्रत्येक प्रथा और प्रत्येक मत के लिए स्थान है।

जाति-विभाग से लाभ—इसी वर्ण-व्यवस्था की बदौलत हिन्दू लोग एक के बाद दूसरी आक्रान्ता जातियों को बड़ी सफलतापूर्वक अपने सामाजिक सङ्गठन का भाग बनाते चले गए। इस आर्य नीति का परिणाम यह हुआ कि मध्य एशिया के जङ्गली





2

-

2

भाग नहीं लेता, फिर भी वह समाज के लिए निरर्थक नहीं होता। उसके लिए राजा, प्रजा सब एक समान हैं। संन्यासी से कोई बड़ा नहीं है। वह गृहस्थियों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखता, अपितु जहाँ तक बन पड़ता है, उन्हें सन्मार्ग का दर्शन कराता है।

साहित्य

वाद का वैदिक साहित्य—वैदिक युग के उत्तरार्ध में जो साहित्य तैयार हुआ, उसमें मुख्य-मुख्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं— सब वेदों के प्रातिशाख्य, पिंगल का छन्दसूत्र, भारतीय रेखा-गणित के प्राचीनतम ग्रन्थ ज्योतिष वेदांग, शल्व-सूत्र, मानव, वौद्धायन, आपस्तम्ब आदि धर्मसूत्र ग्रन्थ, कात्यायन आदि की अनुक्रमणिकाएँ जिन से वैदिक ऋचाओं की सुरक्षा और उन का समन्वय जोड़ने में बड़ी सहायता मिलती है, वैदिक देवताओं का परिचय देने वाला ग्रन्थ 'बृहद्देवता', यास्क का निरुक्त और पाणिनी की अष्टाध्यायी।

यास्क का निरुक्त—वेदों का अभिप्राय समझने में यास्क के निरुक्त से बड़ी सहायता मिलती है। निघण्टु में किसी विद्वान ने वेद के कठिन शब्दों का संग्रह किया था। यास्काचार्य ने निरुक्त में उन शब्दों का अर्थ, सप्रमाणा और साधार दिया है। वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति बताने में यास्क का निरुक्त सब से अधिक प्रामाणिक सिद्ध हुआ है। आचार्य यास्क ने अपने अर्थों की पुष्टि में सैकड़ों ऋचाएँ भी दी हैं। मध्य युग के वेदभाष्यकार सायण ने अपने वेदभाष्य में निरुक्त से बड़ी सहायता ली। वर्तमान वैदिक विद्वानों के लिए भी यास्क का निरुक्त बहुत उपयोगी और प्रामा-

साहित्य लिखा गया। वाल्मीकि की रामायण और व्यास का महा-भारत इस युग की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। इन दोनों ग्रन्थों की कथा इतनी सुप्रसिद्ध हैं कि उन्हें यहाँ देना अनावश्यक है। हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य में इन दोनों ग्रन्थों का अभी तक बड़ा भारी सम्मान है। ये गाथाएँ प्राचीन भाट और चारण्य कण्ठस्थ कर लिया करते थे और उनके मुँह से छोटे-बड़े सभी लोग इन मंगल कथाओं को मन्त्रमुग्ध हो कर सुना करते थे। पिछले दो हजार वर्षों में भारतीय जनता को सदाचार की शिक्षा देने के कार्य में रामायण और महाभारत से कल्पनातीत सहायता मिली है। उनमें प्राचीन भारतीय समाज का जो जीवित चित्र खींचा गया है, वह ऐतिहासिकों के लिए बहुमूल्य है।

ये गाथाग्रन्थ किसी एक युग के नहीं हैं। इनमें समय-समय पर हेर-फेर तथा वृद्धि भी होती रही। क्रमशः उनका आकार बढ़ता चला गया। उनका यह वर्तमान रूप सम्भवतः ईसा की पहली सदी में बना होगा। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि रामायण और महाभारत की मौलिकताएँ, उनमें अन्त तक यत्नवन्ती रहीं और उनसे आठ सदी ईसापूर्व तक का इतिहास जानने में बहुमूल्य सहायता मिल सकती है। इन्हें क्षत्रिय साहित्य की अन्तिम कृति कहा जा सकता है। यद्यपि बाद में समय-समय पर, ब्राह्मणों ने इन ग्रन्थों में बड़ा परिवर्तन और परिवर्धन किया, तथापि उनके द्वारा तत्कालीन क्षत्रियों की स्वाधीन उन्नत दशा का यथेष्ट परिचय मिलता है।

रामायण—महाकवि वाल्मीकि का रामायण काल्पनिक कविता का सब से पहला महाग्रन्थ है। इसी से इसे 'आदि काव्य' भी

कात के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि महाभारत में परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे। सम्भवतः इस महामन्य का प्रारम्भिक निर्माण, 'जय' नाम से, महाकवि व्यास ने किया था। तत्र यह मन्य अपने वर्तमान आकार का करीब दसवां भाग ही था। उसके बाद अनेक सम्पादकों ने इसकी वृद्धि की। इनमें से एक का नाम 'सौति' था। ईसवी सन् के प्रारम्भ तक महाभारत के आकार में बड़ी वृद्धि आ चुकी थी। उसमें आर्य साहित्य को अनेक गाथाएँ तथा राजनीतिक, धार्मिक और दार्शनिक सम्वाद भी जोड़ दिए गए और इस तरह यह विश्वकोश के रूप का महामन्य 'महाभारत' बन गया। ऐतिहासिक साक्षियों से यह सिद्ध होता है कि गुप्तकाल के प्रारम्भ तक महाभारत अपने वर्तमान स्वरूप को पहुँच चुका था। स्मृति ग्रन्थों में महाभारत के प्रमाण प्रायः उपलब्ध होते हैं।

महाभारत में कौरव और पांडवों के पारस्परिक संघर्ष का वर्णन है। इन दोनों पक्षों के बीच में एक नशायुद्ध हुआ, जिस में भारतवर्ष के प्रायः सभी राजकुल, अपनी सेनाओं सहित सम्मिलित हुए थे। अनुश्रुति के अनुसार यह नशायुद्ध ईसा से ३१०२ वर्षपूर्व हुआ। प्रायः सभी ऐतिहासिकों का मत है कि महाभारत का आधार पूर्णरूप से ऐतिहासिक है। अनेक पुरातत्त्वज्ञों की राय में यह युद्ध १००० वर्ष ईसापूर्व हुआ था।

महाभारत के कथानक से प्रतीत होता है कि बड़े युग रामायण के युग की, अपेक्षा अधिक उन्नत या महाभारत के युग में अनेक बड़े-बड़े राज्य शक्तिसंघर्ष के लिए संघर्ष कर रहे थे। तब युद्धकला और वृद्धनीति भी अधिक विकसित हो गई थी। अनार्य और आर्यों के पारस्परिक संघर्ष का अन्त हो चुका था। महाभारत

अनेक विद्वानों की राय में ईसाइयत पर गीता का गहरा प्रभाव पड़ा है। भक्तिवाद पाणिनी के युग में भी था। ईसा के जन्म से बहुत पूर्व ग्रीक लोग भी इसी भक्तिवाद की ओर आकृष्ट हो रहे थे। इससे कम से कम इतना तो अवश्य प्रतीत होता है कि संसार के दो विभिन्न और सुदूर भागों में, असामान्य समता लिए हुए, एक ही ढंग की विचार-धारा का पृथक्-पृथक् विकास हो रहा था। यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि एक विचार धारा का दूसरी धारा पर अवश्य प्रभाव पड़ा, तब तो यही मानना होगा कि गीता के विचारों का ईसाइयत पर प्रभाव पड़ा।

भागवत धर्म—गीता का भक्तिवाद क्रमशः भागवत धर्म के रूप में परिवर्तित हो गया और उस युग में वासुदेव कृष्ण से सम्बन्धित बहुत-सा साहित्य और शिल्प की कृतियाँ तैयार की गईं। मध्ययुग में चैतन्य आदि धार्मिक नेताओं ने इस भागवत धर्म को और भी अधिक परिपुष्ट किया।

गीता और महायान गीता के भक्तिवाद का बौद्धधर्म के विकास पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। इसी प्रभाव से बौद्ध धर्म में 'महायान' का आविर्भाव हुआ।

संसार - महाभारत में संसार नश्वर और क्षणिक है। प्रमाणात्काले कथा भी समाप्त पर म सुप्रसिद्ध है। मरने के पश्चात् १००० म काल वाप न नश्वर क्षणिक ही कथा का पत्र में अनुवाद किया था। तब से यह कहानी समाप्त के अन्त में प्रमाण का पत्र अमूल्य द्वारा समझी जाती है। इन अर्थों में प्रमाण ही मर गृहण और अमरिका के बहुत म प्रसिद्ध प्रमाण विद्वान् १००० म पत्रों की ओर आकृष्ट हुए।

मनु का धर्मशास्त्र—मानव धर्मशास्त्र भी एक बहुत महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति है। यद्यपि उसका वर्तमान रूप लगभग २०० वर्ष ईसापूर्व से लेकर २०० ईसवी के बीच में बना स्वीकार किया जाता है, तथापि उसका मौलिक आधार निस्सन्देह बहुत प्राचीन है। मानव धर्मशास्त्र में कुल मिला कर २५०० श्लोक हैं। इनकी रचना बहुत उत्कृष्ट है। यह स्मृति भारतीय कानून की सर्वप्रथम पुस्तक समझी जाती है। मानव सम्प्रदाय के धर्मसूत्रों के आधार पर इस धर्मशास्त्र का निर्माण किया गया है। हिन्दू धर्म में, जब जाति-विभाग गहरी जड़ें जमा चुका था, उस युग का सही-सही चित्र मनुस्मृति के आधार पर खींचा जा सकता है। वर्तमान अदालतों में भी मनुस्मृति को हिन्दू कानून का आधार स्वीकार किया जाता है।

दर्शन—अन्य दार्शनिकों की तरह भारतीय दार्शनिकों के गम्भीर प्रयत्नों ने भी यही सिद्ध किया है कि मनुष्य का मस्तिष्क विश्व के रहस्यपूर्ण परम तत्त्व को पूर्णता से समझ ही नहीं सकता। बड़े से बड़े विचारक इसे 'रहस्य' ही मानते हैं। उपनिषदों के महान दार्शनिकों से पूछा गया—'हमें ब्रह्म की परिभाषा बतलाइए।' वे चुप रहे। प्रश्न पुनः और भी अधिक आग्रह के साथ दोहराया गया। इस पर उपनिषदों के महान विचारकों ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा "शान्तोय आत्मा" अर्थात्—चुप्पी में ही वास्तविकता है। उन्होंने कहा—'न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाक् न मनो, न विद्यो न विजानीमा।' अर्थात्—न वहाँ आख जाती है, न वाणी से उसे व्यक्त किया जा सकता है, न वहाँ मन ही पहुँच पाता है हमें उसके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान ही नहीं है, न हम

पर ही बल देते हैं। (६) व्यास की उत्तरमीमांसा वेदान्त नाम से पुकारी जाती है। यह वेदान्त मत उपनिषदों पर आश्रित है। वेदान्त मत के अनुसार यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही से बना है और कभी पुनः ब्रह्म में ही विलीन हो जायगा। उपनिषदों में जिन सिद्धान्तों और तत्त्वों का वर्णन केवल आत्म दर्शन और आत्मिक अनुभूति के आधार पर ही किया गया था, उन्हीं तत्त्वों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन वेदान्त शास्त्र में तर्क के आधार पर किया गया।

वेदान्त में तीन प्रस्थान सम्मिलित किए जाते हैं - उपनिषद्, व्यास का ब्रह्म सूत्र और भगवद्गीता। मोटे तौर से इन तीनों को श्रद्धा, ज्ञान और कर्म का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। गीता को योगशास्त्र भी कहा जाता है और गीता के शब्दों में 'कर्म में कुशलता का नाम योग है।' वेदान्त सदैव बहुत प्रणिष्ठित और सर्वप्रिय बन कर रहा है। कालान्तर में शंकराचार्य की विद्वत्ता ने वेदान्त को भारतवर्ष की सबसे बड़ी और लोकाप्रिय फिलासफी बना दिया।

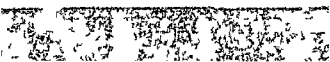
एक प्राचीन कहावत है—'जब वेदान्त प्रकट होता है, तब अन्य शास्त्र चुप होकर बैठ जाते हैं जिन तरह जंगल में शेर के आने पर लोमडियाँ दुबक जाती हैं।

लेखन-कला

सबसे पूर्व मैक्समूलर ने यह स्थापना उपस्थित की कि प्राचीन आर्य लिखना नहीं जानते थे। उसने कहा कि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में लिखने का नाम कहीं भी नहीं आया। इसी आधार पर यह माना जाने लगा कि भारतीय आर्यों ने अशोक के युग में आकर लेखन कला सीखी। उससे पूर्व स्मरव्यशक्ति के आधार







प्राचीन भारत

बुद्ध नाम के एक असाधारण प्रतिभाशाली महापुरुष ने इस धर्म का प्रारम्भ किया। अनेक विचारकों के अनुसार संसार भर के सम्पूर्ण इतिहास में किसी अन्य एक व्यक्ति का मानव जाति के विचारों पर इतना गहरा और इतना व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा, जितना महात्मा बुद्ध का। इस महापुरुष के जीवन की घटनाएँ हजारों वरसों तक एशिया भर की कला का मुख्य स्रोत बन कर रही हैं। करोड़ों सन्तानों को महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं से शान्तिलाम हुआ है और भविष्य में भी होता रहेगा।

महात्मा बुद्ध के देहावसान के १५०० वर्ष बाद तक भारतीय संस्कृति वैदिक और बौद्ध धर्म की दो विभिन्न धाराओं में बहती रही। धीरे-धीरे बौद्ध धारा हिन्दू धारा में ही लीन हो गई। हिन्दू धारा बौद्ध धारा के रंग में रंगी जाकर भी आज इस महा देश की प्रमुख धारा बन गई है और इस देश में बौद्ध धर्म इतिहास की चीज़ रह गया है।

महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व—इस देश के इतिहास में प्रथम ऐतिहासिक महापुरुष महात्मा बुद्ध हुए हैं। उनसे पूर्व के व्यक्तियों का ऐतिहासिक चरित्र धुन्धला और अज्ञात-सा है। उपनिषद् के कर्त्ताओं का नाम तो ज्ञात है, मगर उनके सम्बन्ध में और कुछ भी ज्ञात नहीं। इस देश में सबसे पूर्व महात्मा बुद्ध ही एक ऐसे व्यक्ति हुए, जिन्हें संसार के सब से बड़े व्यक्तियों को प्रथम श्रेणी में भी मूर्धन्य स्थान दिया जा सकता है। सौभाग्य से महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में आज भी इतना विस्तृत साहित्य उपलब्ध होता है कि उनके आधार पर उनके जीवन की सम्पूर्ण घटनाएँ क्रमबद्ध रूप से लिखी गई हैं। संसार की प्राचीन मूर्तियों में सब से बड़ी

•
•

अपने शिष्यों में भी उसने यही भावना भरी और उन्हें आदेश दिया कि तुम में से सभी को पृथक्-पृथक् स्थानों पर जाकर सत्य का उपदेश करना चाहिए। उन्हीं दिनों संजय नाम का एक व्यक्ति स्वयं भारत में प्रमुख धार्मिक नेता गिना जाना था। उसके बहुत से शिष्य महात्मा बुद्ध की शरण में आ गए। सारनाथ से बुद्ध जब राजगृह में गए तो राजवंशों के बहुत से ज्ञत्रिय राजकुमार बौद्ध संघ में दीक्षित हो गए।

पाँच वर्षों तक महात्मा बुद्ध एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार करते रहे। उन्होंने भिज्जु संघ नाम से एक महात्मा संस्था की स्थापना की। भिज्जु एक तरह के धार्मिक स्वयंसेवक होते थे, जिनका उद्देश्य आजन्म संयम का जीवन बिताते हुए मानव जाति की सेवा करना था। शीघ्र ही महात्मा बुद्ध का यह भिज्जु संघ एक बड़ी प्रबल संस्था बन गया।

पुनर्निजलन—गौतम बुद्ध के माता, पिता, पत्नी और पुत्र—सभी लोग अभी जीवित थे। उन्हें जब गौतम बुद्ध के नमाचार ज्ञात हुए तो उन्होंने कपिलवास्तु में उन्हें माघह निमन्त्रित किया। महात्मा बुद्ध कपिलवास्तु पहुँचे और अपने आत्मिय जनों से मिले। बौद्ध साहित्य में इन पुनर्निजलन का अत्यधिक वर्णन और विस्तृत बयान है। रानी यशोधरा भी अपने पति से मिली। इन सन्मिलन के समय उसने अपने पुत्र राहुल को बुला कर कहा— 'देखो, यह भगवं ब्रह्मचारी महात्मा तुम्हारे पिता है।'

बारह बरस का कुमार राहुल कुछ डरे तक उनकी ओर बड़े विन्मय से देखता रहा। इसके बाद वह बड़ी गम्भीरता के साथ अपने पिता की ओर बढ़ा और उनकी भगवती पोशाक को छूकर बोना





मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनके आधार पर उनके शारीरिक सौन्दर्य का अन्दाजा आसानी के साथ लगाया जा सकता है। सूत तथा जातक ग्रन्थों से उनकी असाधारण प्रतिभा, और उनकी मनोरंजक शैली का यथेष्ट परिचय मिलता है। एक बार एक स्थान पर उन्हें बताया गया कि 'यहाँ दो तपस्वी नंगे रहते हुए, कठोर तपस्या के उद्देश्य से ठीक गाय और कुत्ते के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उन्हें अगले जन्म में इसका क्या फल मिलेगा।'

'यदि उन्हें सफलता मिली, तब तो वे गाय और कुत्ता बन जाएँगे। अन्यथा वे नरक में ही रहेंगे।'

एक बार शारिपुत्र में अगाध अद्भुत उमड़ पड़ी और उसने महात्मा बुद्ध से कहा—'भगवन ! मेरी राय में आप के समान न कोई और व्यक्ति कभी हुआ है, न है और न होगा।'

'हाँ शारिपुत्र ! मालूम होता है, तुम सम्पूर्ण प्राचीन महापुरुषों के सम्बन्ध में सभी कुछ जानते हो।'

'नहीं भगवन !'

'अच्छा तो कम से कम भविष्य के महापुरुषों को तो जानते ही होंगे।'

'नहीं भगवन !'

'अगर कम से कम मर दिल की प्रत्येक बात तो तुम जानते ही होंगे।'

वह भी नहीं जानता भगवन !'

ना शारिपुत्र ! तुम इनकी व्यापक स्थापना कैसे करते हो !'

महात्मा बुद्ध की शिनाएँ इनकी नैतिक और इनकी स्पष्ट हैं

या इनकी गैला इनका मनोरंजक है किसकार के धार्मिक साहित्य

r
r
r

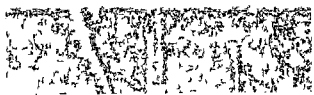
r

r
r
r

r



2
2
2



महत्ता देते थे कि उनके खिलाफ जनता में प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। महात्मा बुद्धने अपनी असाधारण प्रतिभा और सत्यज्ञान के बल पर इस प्रतिक्रिया का नेतृत्व किया। वह एक बड़े कुलीन वंश के राजकुमार थे, उनका महान त्याग उन्हें सर्वप्रिय बनाने में और भी अधिक सहायक हुआ। राज्य, धन और परिवार इन सब का मोह छोड़ कर जो प्रतिभाशाली राजकुमार बरसों तक सत्य की खोज में जंगलों की साक छानता फिरा, उसके व्यक्तित्व की उज्ज्वल गरिमा से पुरोहितों के खिलाफ उठी हुई प्रतिक्रिया यदि देशव्यापी ज्वालाओं के रूप में भभक पड़ी, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। बुद्ध ने धर्म के बन्द फाटक को खोल कर भारत की जनता को सत्य की वह राह दिखा दी, जिस पर चलने के लिए किसी प्रकार का आडम्बर करने की आवश्यकता नहीं है, जिस पर चलने से कोई किसी को रोक नहीं सकता। क्षत्रियों ने उस क्षत्रिय राजकुमार की बातों को स्वभावतः अधिक ध्यान के साथ सुना होगा, क्योंकि वह उन्हें ब्राह्मणों की बौद्धिक अधीनता से मुक्त कर रहा था। बुद्ध की शिक्षाएँ इतनी सरल और इतनी स्पष्ट हैं, कि उनके प्रचार में अवश्य ही कोई बाधा न हुई होगी। साथ ही, बुद्ध ने अपने उपदेश उम्र भाषा में दिये थे, जो सर्वसाधारण में बोली और समझी जाती थी। उनकी सरल और व्यावहारिक शिक्षाओं को, जो चाहे व्यवहार में ला सकता था, वहाँ किसी क्रिस्म की बाधा या आडम्बर नहीं किया जाता था। भिन्न-सब द्वारा भी बौद्ध धर्म के प्रचार में असाधारण सहायता मिली और कालान्तर में शक्तिशाली सम्राट् अशोक ने अपने राज्य की सम्पूर्ण शक्ति लगा

कर बौद्ध धर्म को विश्वव्यापी धर्म बना दिया ।

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य— प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य 'त्रिपिटक' नाम से प्रसिद्ध है । इन्हें विनय, सूत्र और अभियन्म फहते हैं । इन तीनों में क्रमशः संघ के संगठन सम्बन्धी निर्देश, महात्मा बुद्ध के उपदेश और बौद्ध शिक्षार्थों की दार्शनिकता वर्णित है । कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध के देहावसान के बाद उनके बड़े-बड़े शिष्यों ने राजगृह में एक महासभा बुलाई थी और उसमें त्रिपिटक का निर्माण किया गया था । यह सम्भव है कि त्रिपिटक का वर्तमान रूप बनने में एक शताब्दी का समय लगा हो ।

जैन धर्म

जैन धर्म के प्रारम्भिक आचार्य—जैन मत का प्रारम्भ वर्धमान महावीर से स्वीकार किया जाता है । परन्तु जैन साहित्य के अनुसार जैन मत के संस्थापकों, उनके तीर्थंकरों में, वर्धमान महावीर अन्तिम थे । ये सभी तीर्थंकर क्षत्रिय जाति के थे । इन २४ तीर्थंकरों में प्रथम का नाम "ऋषभ" था । वह अयोध्या के राजा के पुत्र थे । प्रारम्भ के बाईस तीर्थंकरों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं है, तेईसवें तीर्थंकर का नाम 'पार्श्व' था । उनका जन्म चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर से २५० वर्ष पूर्व हुआ था । उन्होंने अपनी शक्ति तथा सुधारात्मक प्रवृत्ति के आधार पर लोगों में पुनर्जीवन का संचार किया था ।

महावीर का जीवन—वैशाली के एक क्षत्रिय राजवंश में महावीर का जन्म हुआ था । उनका प्रारम्भिक नाम वर्धमान था । ३० वर्ष की आयु में घर-बार छोड़ कर वर्धमान तपस्वी बन गए ।



कर बौद्ध धर्म को विश्वव्यापी धर्म बना दिया ।

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य— प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य 'त्रिपिटक' नाम से प्रसिद्ध है । इन्हें विनय, सूत्र और अभियन्म कहते हैं । इन तीनों में क्रमशः संघ के संगठन सम्बन्धी निर्देश, महात्मा बुद्ध के उपदेश और बौद्ध शिक्षार्थों की दार्शनिकता वर्णित है । कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध के देहावसान के बाद उनके बड़े-बड़े शिष्यों ने राजगृह में एक महासभा बुलाई थी और उसमें त्रिपिटक का निर्माण किया गया था । यह सम्भव है कि त्रिपिटक का वर्तमान रूप बनने में एक शताब्दी का समय लगा हो ।

जैन धर्म

जैन धर्म के प्रारम्भिक आचार्य—जैन मत का प्रारम्भ वर्धमान महावीर से स्वीकार किया जाता है । परन्तु जैन साहित्य के अनुसार जैन मत के संस्थापकों, उनके तीर्थंकरों में, वर्धमान महावीर अन्तिम थे । ये सभी तीर्थंकर त्रिचय जाति के थे । इन २४ तीर्थंकारों में प्रथम का नाम "ऋषभ" था । वह अयोध्या के राजा के पुत्र थे । प्रारम्भ के बाद में तीर्थंकरों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं है, तेइन्वे तीर्थंकर का नाम 'पार्श्व' था । उनका जन्म चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर से २५० वर्ष पूर्व हुआ था । उन्होंने अपनी शक्ति तथा सुधारत्मक प्रवृत्ति के अग्र पर लोगों में पुनर्जीवन का संचार किया था ।

महावीर के जीवन—वैशाली के एक क्षत्रिय राजवंश में महावीर का जन्म हुआ था । उनका प्रारम्भिक नाम वर्धमान था । ३० वर्ष की आयु में घर-बार छोड़ कर वर्धमान तपस्वी बन गए ।

मदत्ता देते थे कि उनके गिनाक जनता में प्रतिक्रिया की भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। महात्मा बुद्धने अपनी अमात्य प्रतिभा और सत्यज्ञान के बल पर इस प्रतिक्रिया का नेत्र किया। वह एक बड़े कुलीन वंश के राजकुमार थे, उनका त्याग उन्हें सर्वप्रिय बनाने में और भी अधिक सहायक हुआ। राज्य, धन और परिवार इन सब का मोड़ छोड़ कर जो प्रतिशाली राजकुमार बरसों तक सत्य की रोज में जंगलों की सख ध्यानवा फिरा, उसके ध्येयत्व की उज्ज्वल गरिमा से पुरोहितों के विलाक ठठी हुई प्रतिक्रिया यदि देशव्यापी ज्वालाओं के ल में भभक पडी, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। बुद्ध ने धर्म के बन्द फाटक को खोल कर भारत की जनता को सत्य की वह राह दिखा दी, जिम पर चलने के लिए किसी प्रकार का आडम्बर करने की आवश्यकता नहीं है, जिस पर चलने से कोई किसी को रोक नहीं सकता। चत्रियों ने उस चत्रिय राजकुमार की बातों को स्वभावतः अधिक ध्यान के साथ सुना होगा, क्योंकि वह उन्हें ब्राह्मणा की बौद्धिक अधीनता से मुक्त कर रहा था। बुद्ध की शिक्षाएँ इतनी सरल और इतनी स्पष्ट हैं, कि उनके प्रचार में अवश्य ही कोई बाधा न हुई होगा। साथ ही, बुद्ध ने अपने उपदेश उस भाषा में दिये थे, जो सर्वसाधारण में बोली और समझी जाती थी। उनकी सरल और व्यावहारिक शिक्षाओं को, जो चाहे व्यवहार में ला सकता था, वहाँ किसी किस्म की बाधा या आडम्बर नहीं किया जाता था। भिक्षु सघ द्वारा भी बौद्ध धर्म के प्रचार में असाधारण सहायता मिली और कालान्तर में शक्तिशाली सम्राट् अशोक ने अपने राज्य की सम्पूर्ण शक्ति लगा

इसमें कुछ भी अनौचित्य न होगा। उनके फयदानुसार वृक्ष आदि सभी वस्तुओं में पृथक्-पृथक् चेतना है। किसी जीव को जरा भी कष्ट न पहुँचाने में ही मनुष्य जीवन की सफलता है। जैन लोग तपस्या को ही मोक्ष का साधन मानते हैं। पूर्ण उपवास-पूर्वक अपने जीवन का अन्त कर लेना, जैन धर्म की दृष्टि से, एक महान् पुण्य है।

जैन धर्म यद्यपि कभी भारतवर्ष भर में व्याप्त नहीं हुआ, तथापि पिछले २५०० वर्षों में वह इस देश का एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय अवश्य रहा है। उसके पिछले इतिहास को कुछ संक्षिप्त बातों का यहाँ निर्देश करना अभीष्ट होगा।

जैन मत का इतिहास—सम्भवतः महावीर के देहान्त के बाद जैन लोगों में मतभेद खड़े हो गए होंगे। यह मतभेद क्व हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, परन्तु जैन लोगों में दो मुख्य भेद बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। ये दोनों एक दूसरे से बड़ी घृणा करते रहे हैं। अब तक भी इन दोनों में परस्पर खान-पान और विवाह आदि के सम्बन्ध नहीं होते। इन दोनों का साहित्य भी पृथक्-पृथक् है। कम से कम इसवी सन् के प्रारम्भ से तो अवश्य ही पूर्व इन दोनों विभागों का जन्म हो चुका था। ये विभाग श्वेताम्बर और दिगम्बर कह्य में हैं। श्वेताम्बर जैन सफेद कपड़े की पोशाक पहनते हैं और वे ब्रह्म धारण करने को पाप नहीं मानते। दिगम्बर जैन नग्न रहने में ही धर्म समझते हैं आज भी अनेक दिगम्बर नग्न रहते हैं। इन दिगम्बरों में ४ भेद हैं और श्वेताम्बरों में ८४ भेद। कहा जाता है कि ये भेद ईसा की दूसरी शताब्दी से शुरू हुए। इन ८८ भेदों का अतिरिक्त जैनो



इसमें कुछ भी अनौचित्य न होगा। उनके कथनानुसार वृक्ष आदि सभी वस्तुओं में पृथक्-प्रथक् चेतना है। किसी जीव को जरा भी कष्ट न पहुँचाने में ही मनुष्य जीवन की सफलता है। जैन लोग तपस्या को ही मोक्ष का साधन मानते हैं। पूर्ण उपवास-पूर्वक अपने जीवन का अन्त कर लेना, जैन धर्म की दृष्टि से, एक महान् पुण्य है।

जैन धर्म यद्यपि कभी भारतवर्ष भर में व्याप्त नहीं हुआ, तथापि पिछले २५०० वर्षों में वह इस देश का एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय अवश्य रहा है। उसके पिछले इतिहास की कुछ संक्षिप्त बातों का यहाँ निर्देश करना अभीष्ट होगा।

जैन मत का इतिहास—सम्भवतः महावीर के देहान्त के बाद जैन लोगों में मतभेद खड़े हो गए होंगे। यह मतभेद कदा हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, परन्तु जैन लोगों में दो मुख्य भेद बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। ये दोनों एक दूसरे से बड़ी घृणा करते रहे हैं। अब तक भी इन दोनों में परस्पर त्याग-पान और विवाह आदि के सम्बन्ध नहीं होते। इन दोनों का साहित्य भी पृथक्-पृथक् है। कम से कम ईसवी सन् ५ प्रारम्भ से तो अवश्य ही पूर्व इन दोनों विभागों का जन्म हो चुका था। ये विभाग श्वेताम्बर और दिगम्बर के रूप में हैं। श्वेताम्बर जैन संप्रदाय कपड़े की पोशाक पहनते हैं और दिगम्बर जैन धर्म के पाप नहीं मानते। दिगम्बर जैन नग्न रहते हैं। धर्म सम्बन्ध में आज भी इनके दिगम्बर नग्न रहते हैं। इन दिगम्बरों में ४ मत हैं और श्वेताम्बरों में २४ भेद। कहा जाता है कि इन दिगम्बरों का दसवीं शताब्दी से शुरु हुआ। इन दिगम्बरों में ४ मत हैं जिनमें

संस्था है। वर्तमान जैन धनी और व्यवहार पुरातन हैं। जैन मन्दिर सुन्दरता और स्वच्छता की दृष्टि से देश भर में प्रसिद्ध हैं। जैन लोग अभी तक पूर्णतया अहिंसात्मक हैं।

जैन साहित्य—जैन धर्म का साहित्य बड़ा विशाल है। साहित्य का पर्याप्त भाग काफी प्राचीन है, यह प्राकृत भाषा में है। यद्यपि भारतीय संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से इस साहित्य का अध्ययन पर्याप्त उपयोगी है, तथापि “इसकी शैली बहुत अल्प कर्पक है और उसमें हृदय को झूने की सामर्थ्य बहुत कम है।” प्रारम्भिक जैन लेखकों ने दक्षिण की द्राविड भाषाओं में भी पर्याप्त साहित्य लिखा। तामिल, तिलगू, कनाडी भाषाओं को सन्तान करने में जैन लेखकों ने बड़ा भाग लिया। तामिल के जीवक चिन्तामणि आदि जैन ग्रन्थों का द्राविड संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन लेखकों में हेमचन्द्र सर्वश्रेष्ठ था। बारहवीं सदी में वह राजा कुमारपाल के दरबार का रत्न था। हेमचन्द्र ने कुमारपाल को भी जैन धर्म में दीक्षित कर लिया था।

जैन निर्माण कला—जैन कला का सब से अधिक अन्तः प्रभाव तत्कालीन भवननिर्माणकला पर पड़ा। बारहवीं और बारहवीं सदी में जैन भवन निर्माण कला उन्नति के शिखर पर पहुँच गई थी। जैन कला बौद्ध कला से सर्वथा भिन्न है। जैन तपस्वी अवशेषों के पूजक नहीं थे। वे सघ वना कर भी नहीं रहते थे। स्वभावतः उनकी इस मनोवृत्ति का प्रभाव उनकी कला पर भी पड़ा है। इसी कारण जैन कला में स्तूप और विशाल इन दोनों का नितान्त अभाव है। उत्तर भारत में चित्तौड़ का

विजय स्तम्भ और आवृ वर्षवत के जैन मंदिर, जैन वास्तुविद्या के बहुत श्रेष्ठ उदाहरण हैं। ये जैन भवन बहुत शानदार हैं और इन्हें बनाने में निस्सन्देह बड़े सूक्ष्म कला-कौशल की आवश्यकता हुई होगी। दक्षिण में जैन कला का प्राचीन अत्रशेष श्रवण बेलगोल का विश्व प्रसिद्ध मूर्ति है। एक पहाड़ी पर एक बड़ी शिला को काट कर यह सत्तर फीट ऊँची मूर्ति घड़ी गई है। एक तपस्वी समाधि लगाए बैठा है और उसके शरार के व्यवधानों में झाड़ झंझाड़ निकल आए हैं। यह मूर्ति गंग वंश के किसी राजा के एक मन्त्री ने ईसा की बारहवीं सदी के अंत में बनवाई थी। गुजरात में गिरनार और शत्रुञ्जय नामक स्थानों पर बड़े सुन्दर प्राचीन जैन मन्दिर हैं।

जैन और बौद्ध धर्मों में भेद—भारतवर्ष में बौद्ध धर्म के अनुयायी आज हूँदे भी नहीं मिलते; परन्तु जैन लोग आज भी बाकी हैं। किसी समय बौद्ध धर्म भारतवर्ष की बहुसंख्या का धर्म बन गया था और जैन धर्म कभी उतना व्यापक नहीं हुआ। तथापि बौद्ध धर्म इस देश में से नष्ट होगया और जैन धर्म, उनी प्रकार आज भी बाकी है। ऐसा क्यों हुआ? सम्भवतः इस का यह कारण है कि जैन मतानुयाइयों में एक दृढ़ तक परस्पर सहयोग की वह गहरी भावना उत्पन्न हो गई थी जिम ने उन्हें अपने आदर्शों से डिगने नहीं दिया। जैन लोग पृथक्-सम्प्रदायों के रूप में पृथक्-पृथक् पारवार का स्वरूप धारण कर गए थे। वे सदैव सन्पन्न और अष्टवसायी रहे। उन पर जो धार्मिक अत्याचार किए गए, उन से उनका आन्तरिक प्रतिरोध की शक्ति और भी अधिक बढ़ गई होगी।

भेद हैं। बौद्ध धर्म मनुष्य के मस्तिष्क और आचार बुद्धि को जैन मत की अपेक्षा बहुत अधिक अपील करता है। जैन लोग एकान्त-वास को पसन्द करते हैं, और बौद्ध लोग सघ जीवन को। बौद्ध धर्म सदैव अपने को परिस्थितियों के अनुसार ढालता चला गया और जैन मत सदैव अपरिवर्तनशील बन कर रहा।

सातवां अध्याय

प्राग्भौर्य काल

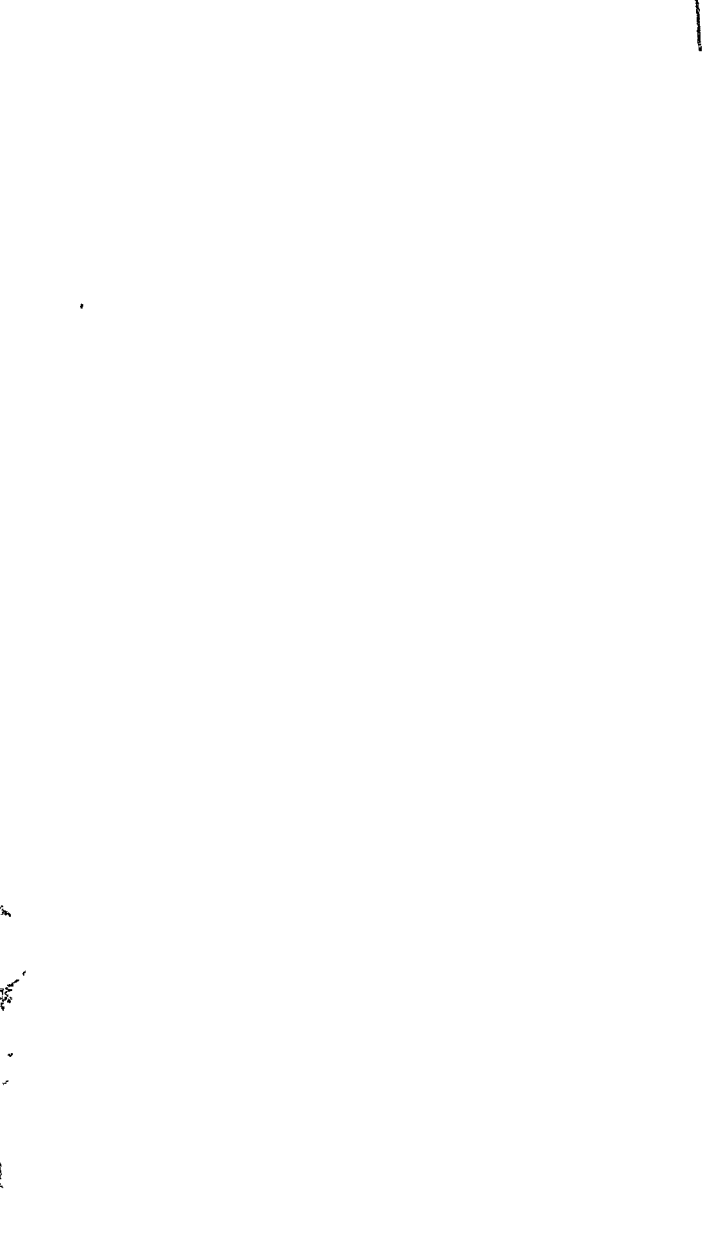
१. राजतन्त्र तथा गण राज्य

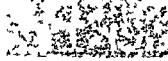
षोडश महाजानपद—सातवी सदी ईसा पूर्व से भारत वर्ष का राजनीतिक इतिहास उतना अनिश्चित नहीं रहता । उस युग में हमें उत्तरीय भारत अनेक ऐसे राज्यों में बँटा हुआ प्राप्त होता है, जिन में परस्पर मिल जाने की प्रवृत्ति है । बौद्ध साहित्य में हमें उस युग के सोलह महाजानपदों के नाम उपलब्ध होते हैं । ये राज्य थे—

| | |
|----------|-------------|
| १. काशी | ६. कुरु |
| २. कोशल | १०. पांचाल |
| ३. अग | ११. मत्स्य |
| ४. मगध | १२. शूरसेन |
| ५. वज्जी | १३. अस्सक |
| ६. मल्ल | १४. अवन्ति |
| ७. चेदी | १५. गान्धार |
| ८. वत्स | १६. काम्बोज |

प्रारम्भिक जैन साहित्य में भी मामूली से भेद के साथ इन सोलह जनपदों की यही सूची प्राप्त होती है । इन में कुछ गण-









काम्बोज—कई बार काम्बोज और गान्धार को एक साथ मिला दिया जाता है। यह राज्य भी उत्तरपश्चिमी भारत में ही था। इसकी पश्चिमी सीमा सम्भवतः 'काफिरिस्तान' से मिलती थी, जहाँ आज तक भी "कामोजे" नाम की एक जाति मिलती है। राजपुर इसकी राजधानी थी। बाद में काम्बोज भी एक गणराज्य बन गया। कौटिल्य ने काम्बोज की गणना एक संघ के रूप में ही की है।

गणराज्य—इस तरह, हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध के जीवन काल में उत्तरीय भारत में कोशल, मगध, अवन्ति और कौशाम्बी नाम के चार शक्तिशाली राज्य थे। इसके अतिरिक्त बहुत से छोटे-छोटे राज्य भी थे। इन सब राजतन्त्र राज्यों के साथ ही साथ अनेक गणराज्य भी थे। इनमें से कुछ में पूर्ण प्रजातन्त्र शासन था और कुछ में आंशिक प्रजातन्त्र। इनमें से १५ गणराज्यों के नाम हमें आज भी उपलब्ध होते हैं। इनका राज्यबन्ध निर्दिष्ट राजसभाओं द्वारा होता था। राज्य के प्रधान कार्यकर्त्ता भी दण्डाद, चुने जाते थे। अनेक शताब्दियों तक इन प्रजातन्त्र गणराज्यों ने उत्तरीय भारत की राजनीति में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। बाद में बढ़ती हुई विभिन्न राजसत्ताओं व सन्तुल्य इन गणराज्यों को तिर भुङ्कना ही पड़ा।

इन गणराज्यों में :

जा चुका है।

१६०

1 2 3

4

5

6

7

8

9

•

—



10

वर्ष की दीर्घकालीन शान्ति में खलल डाल दिया। अफ़ग़ानिस्तान के सुघड़ सैनिकों ने पूरी शक्ति के साथ सिकन्दर की सेनाओं का मुकाबला किया, परन्तु नौ महीनों के भयंकर युद्ध के बाद अफ़ग़ान लोगों को हार मान लेनी पड़ी और इस पार्वत्य प्रदेश के सुरक्षित दुर्ग सिकन्दर के हाथ में आ गए। इस के बाद सिकन्दर ने अस्सकनियों के केन्द्र मस्सागा पर चढ़ाई की। तीव्र मुकाबले के बाद, अस्सकनियों पर विजय प्राप्त कर, सिकन्दर ने मस्सागा में कल्लेब्राम का घृणित हुक्म दे दिया। इस समय तक भी पंजाब और सिन्धु नदी की घाटी के छोटे-छोटे राज्य पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष में डूबे रहे और उन्होंने ने इस सांभे दुश्मन की ओर ध्यान नहीं दिया। किसी ने सिकन्दर के मार्ग में बाधा नहीं दी। यहाँ तक कि अनेक राज्यों ने सिकन्दर का स्वागत किया। तक्षशिला का राजा पुरु से खार खाता था, अतः उसने पुरु का नाश करने के उद्देश्य से सिकन्दर का सहर्ष स्वागत किया। सिकन्दर को और चाहिये ही क्या था। उसने तक्षशिला में अपनी सेना के कैम्प डाल दिये।

इधर सिकन्दर को थकौमादी सेना आराम करने लगी, उधर उसने राजा पुरु के पास यह सन्देश भेजा कि वह स्वयं ही आत्म-समर्पण करदे। सम्भवतः सिकन्दर का उमोद होगा कि अन्य राजाओं को तरह पुरु भी आत्म-समर्पण कर देगा, मगर पुरु किसी और मिट्टी का बना था। पुरु ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और जेहलम नदी के तट पर शत्रु से मुकाबला करने की तैयारिया शुरू कर दीं।

पुरु से युद्ध—जब सिकन्दर पुरु पर आक्रमण करने बड़ा, तो उसने देखा कि पुरु के राज्य की सीमा, जेहलम नदी में, बाढ़ आई

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100

८०००० भारतीयों का कत्ल किया और इस से कई गुना आंध्र लोगों को गुलाम बना लिया। इन अत्याचारों से घबरा कर कुछ गणों ने सिकन्दर को आत्मसमर्पण भी कर दिया। अन्त में सिकन्दर की सेना सिन्धु नदी में आ पहुँची। सिन्धु नदी से यह वेड़ा धरव महासागर में गया और यहां सामुद्रिक तूफानों से उनको बड़ी दुर्गति हुई। स्वयं सिकन्दर अपनी सेना के एक भाग को मकरान के रेगिस्तान में से लेकर चला। यहां भी उसे भयंकर विपत्तियों का सामना करना पड़ा।

सन् ३२३ ईसा पूर्व में, ३३ साल की उम्र में ही, सिकन्दर का देहान्त हो गया। उसके देहान्त के कुछ ही वर्ष बाद तक उसका सम्पूर्ण भारतीय साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट ही गया। वस्तु में उसके साम्राज्य का विनाश उसके जीवनकाल में ही शुरु हो गया था और कर्मानिया (Karmania) की राह लौटते हुए उसे अपने सत्रप फिलिपोस (Phillipos) के पदच्युत कर दिए जाने का समाचार भी मिल गया था। सिकन्दर के देहान्त के बाद, सन् ३१७ ईसापूर्व तक, भारत में से प्रोक्त सत्ता पुरारूप से नष्ट हो गई।

आक्रमण के प्रभाव—सिकन्दर भारतघर्ष को अपने साम्राज्य का स्थिर अंग बनाना चाहता था। परन्तु उसका यह महत्वाकांक्षा पूरी न हो सकी। इस देश पर उसका हमला सीम प्रान्त पर ही एक चढाई के समान ही सिद्ध हुआ। वह फेवल गान्धार और सिन्धु नदी की घाटी को ही विजय कर सका। भारतवर्ष के हृदय तक पहुँचने का वह प्रयत्न भी न कर सका। सिकन्दर के इन आक्रमणों से इस देश का शासन प्रणाली और लोगों के रीति-रिवाज पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जिस गरिमाशाली प्रोक्-

१५

१६

१७

१८

20
+ 1
+ 1
+ 1

12

था। पाटलिपुत्र से एक मार्ग गंगानदी की उपजाऊ घाटी में होते हुए तामलुक के सामुद्रिक बन्दरगाह तक चला गया था। सड़कों पर मील बजाने वाले पत्थर लगे रहते थे। कहा जाता है कि फारस के राजमार्ग से मौर्य सम्राट् ने इस भारतीय राजमार्ग का विचार लिया था। राजनीतिक और व्यापारिक दृष्टि से इस राजमार्ग की बड़ी महत्ता थी। इन मार्गों द्वारा राजसेना को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की व्यवस्था भी बहुत उत्तम थी।

सुव्यवस्थित और शक्तिशाली शासन—सम्राट् की अपनी अध्यक्षता में पाटलिपुत्र की सरकार एक बहुत ही समुन्नत दफ्तर-शाही सिद्ध हो रही थी। सम्राट् स्वयं एक बहुत ही दक्ष और प्रतिभाशाली शासक थे। सेना, न्याय, नियामक सभा और राजकर्मचारियों पर सम्राट् का पूरा निन्त्रण था। साम्राज्य के उच्चतम न्यायाधीश स्वयं सम्राट् ही थे और इस दृष्टि से प्रजा के लिए वह बहुत सुलभ थे। सम्राट् की सहायता के लिए मन्त्री होते थे। ये मन्त्री अपने-अपने विभाग के अध्यक्ष थे। अरौक के शिलालेखों में इन्हीं को 'महामात्र' नाम से लिखा है। इन मन्त्रियों का चुनाव मन्त्रिपरिषद् में से किया जाता था। इन्हें ४८००० पण वार्षिक वेतन दिया जाता था। प्रत्येक महत्वपूर्ण मामले के सम्बन्ध में, सम्राट् उन विभाग के मन्त्रों से सलाह अवश्य लेते थे।

इस मन्त्रिसभा के अनिश्चित एक मन्त्रपरिषद् भी होता था। मन्त्रिपरिषद् के प्रत्येक सदस्य को १२००० पण वार्षिक वेतन दिया जाता था। महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में सम्राट् इस परिषद् के बहुमत के अनुसार कार्य करत थे।

वर्ष की सैन्यशक्ति बड़ी प्रबल थी। स्वयं सिकन्दर को भारत का कुछ भाग विजय करने में जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ा, उन से उसकी विश्वविजयिनी ग्रीक सेना का भी हौसला टूट गया। ७. अट्टाड चन्द्रगुप्त की सेना में ४००००० स्थिर सैनिक थे। इसका नियन्त्रण एक सुसंगठित युद्ध-समिति द्वारा होता था। यह युद्ध समिति पांच-पांच सदस्यों की छः उपसमितियों में विभक्त थी। इन उपसमितियों के कार्य थे—सैन्य संचालन, सामान जमा करना और युद्ध क्षेत्र में पहुँचाना, पदाति, घोड़सवार, रथ और हस्ति सेना का नियन्त्रण। यह भारतीय सेना धनुष बाणों से लड़ती थी। प्रत्येक सैनिक के पास अपने कद के बराबर लम्बा एक धनुष तथा ६-६ फीट के बाण रहते थे। ग्रीक लेखकों का कथन है कि जब ये बाण पूरी शक्ति से चलाए जाते थे तो वे तोहों की ढालों को भी इस तरह छेद डालते थे, जैसे वे कागज़ से बनी हों।

प्रान्तीय सरकार - भारत साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। पाटलिपुत्र की केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त, अशोक के शासनकाल में भारतवर्ष चार मुख्य भागों में विभक्त था— उत्तरीय भाग जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। पश्चिमी प्रान्त जिसका राजधानी उज्जैन थी। दक्षिणी प्रान्त, जिसका राजधानी सुवर्णागिरि थी और कलिंग जिनका राजधानी का नम तापाल था। इन प्रान्तों पर शासन करने के लिए प्रायः राज-परिवार के व्यक्ति ही वायसराय बना कर भेजे जाते थे।

तब—इन मुख्य प्रान्तों के अतिरिक्त मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक गणराज्य भी थे। कौटिल्य ने इन्हें 'सर्व कानान

4-7

4-8

4

5

कुशीनगर का चकर लगा कर यह दल राजधानी को लौट आया। इसी अवसर पर लुम्बिनी में अशोक ने एक स्तम्भ भी लगवाया।

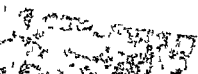
शिलालेख—अशोक को अमर बनाने में उसके शिलालेखों का बड़ा महत्वपूर्ण भाग है। वे कुल मिलाकर ३६ हैं। अशोक के राज्याभिषेक के १३ वर्ष बाद से उनका निर्माण शुरू हुआ। उनमें धर्म और आचार की व्याख्या के अतिरिक्त, अशोक ने किस तरह अपने राज्य तथा विदेशों में धर्म प्रचार किया तथा वह किस तरह अपनी प्रजा पर शासन करना चाहता था और अपने राजकर्मचारियों से प्रजा के प्रति वह किस तरह के आचरण की आशा करता था, आदि बातों का उल्लेख है।

संसार के प्राचीन उल्लेखों में इन शिलालेखों का अपना एक निराला ही स्थान है। इन अमर शिलालेखों पर सम्राट् अशोक ने अपने हार्दिक उद्गार ऐसी भाषा में खुदवाए हैं, जैसे वह अपने किसी मन्त्री को कोई निज्जु पत्र लिखा रहा हो।

जो शिलालेख चट्टानों पर खुदे हुए हैं, वे अधिक प्राचीन हैं और सम्पूर्ण देश के विभिन्न हिस्सों में वे उपलब्ध हुए हैं। अशोक के स्तम्भ हिमालय की तराई में ही उपलब्ध हुए हैं। ये स्तम्भ बढ़िया रेतिले पत्थर के हैं और ऐसा पत्थर हिमालय की तराई में ही पाया जाता है।

इन लेखों का निम्नलिखित श्रेणीकरण किया जा सकता है—

१. पेशावर के निकट शाहवाज़गढ़ी से काठियावाड़ के गिरनार तक और हज़ारा ज़िले के मानसेहरा से उड़ीसा के तुपालि नगर तक के प्रदेश में १४ शिलालेख उपलब्ध होते हैं। इन पर धर्म की विशद व्याख्या अंकित है।





भिन्नु धर्मप्रचार के लिये गए, उनका नेता स्वयं सम्राट् अशोक का पुत्र महेन्द्र था। बाद में राजपुत्र महेन्द्र की बहन भी अपने भाई के साथ जा मिली। प्रतीत होता है कि महेन्द्र ने पहले पहले दक्षिण भारत में अपने कार्य का केन्द्र बनाया था, बाद में वह लंका चला गया। उस दिन के बाद में लंका बौद्ध धर्म का मजबूत किला बन गया।

अशोक के साम्राज्य का विस्तार—उत्तर पश्चिम में सम्राट् अशोक के मागध साम्राज्य का विस्तार मौर्य राजा एण्टिओकस के राज्य की पूर्वोक्त सीमा तक था। उसमें पेशावर और हजारों के जिले भी सम्मिलित थे। मीमाप्रान्त के प्रदेश का राजधानी तक्षशिला थी। काश्मीर, तराई, नेपाल आदि हिमालय के प्रदेश भी अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत थे। बंगाल भी उसके साम्राज्य में था। परन्तु सम्भवतः कामरूप (आसाम) अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित नहीं था। दक्षिण में अशोक के राज्य की सीमा तामिल राज्य से जुड़ी हुई थी। अशोक के दक्षिण प्रान्तों का केन्द्र सुवर्णगिरि नगरी थी यह नगरी किस जगह थी, इस सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता। कनिग के प्रान्त की राजधानी तोशाली थी। आन्ध्र, पुलिन्द, भोज, राष्ट्रिक आदि गणराज्य भी अशोक के शासन की अधीनता में थे। पश्चिम में वह साम्राज्य अरब समुद्र तक विस्तृत था। सुराष्ट्र का राजगिरनार थी और वहां अशोक ने एक मौर्य अफसर को के रूप में नियुक्त किया हुआ था।

अशोक का पारिवारिक जीवन—बौद्ध साहित्य अशोक के सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाओं का उल्लेख

और उसकी इमारतों तथा स्मारकों की संख्या भी खूब बढ़ गई।
 अशोक ने धार्मिक जुलूसों की प्रथा डाली, भिक्षु संघों में
 भाषण दिए, चर्च का संगठन किया, धार्मिक इमारतें, वनवाड़ी, अपने
 स्वजनों को धर्म प्रचार के कार्य में लगाया, और मागध साम्राज्य
 की सम्पूर्ण व्यवस्थित शक्ति महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार
 सर्वजन-हितकारी कार्यों में लगा दी। परिणाम यह हुआ कि कुब्र
 ही घरसों में संसार के धार्मिक इतिहास का नक्शा ही बदल गया।

बौद्ध साहित्य में अशोक को एक महान् सन्त के रूप में
 चित्रित किया गया है। हैवेल ने लिखा है कि विचारों की
 पवित्रता, चरित्र की शुद्धता और मनुष्य मात्र के लिए भ्रातृत्व
 भाव को ही यदि सन्तपन की कसौटी माना जाय तो संसार के
 बड़े-बड़े मजहबियों को भी अशोक को सन्त मानने में आना-
 कानी नहीं करनी चाहिए।

इतिहास में अशोक का स्थान—शान्ति और सदाचार के
 दृढ सम्राट् अशोक का संसार के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण
 स्थान है। अशोक की तुलना प्रायः ईसाइयत के कौन्स्टैन्टाइन
 और सेंट पाल से की जाती है। परन्तु अशोक की तुलना कौन्स्टै-
 न्टाइन से करना अशोक के साथ अन्याय करना है। कौन्स्टैन्टाइन
 की तुलना तो कनिष्क के साथ हो सकती है। उसी के समान
 उसने एक सर्वप्रिय धर्म को राज्य-धर्म बना दिया था। सेंट पाल
 ने अवश्य ही अशोक के समान एक प्रान्तीय धर्म को विश्वधर्म
 बनाया था। परन्तु जहाँ सेंट पालने ईसाइयत को पहले की अपेक्षा
 भी अधिक गुथीला बना दिया, वहाँ अशोक ने महात्मा बुद्ध की
 दृढ शिक्षाओं को और भी अधिक सर्वजन-हितकारी रूप देने

और जैन साहित्य में उसकी वैसी ही महिमा लिखी है, जैसी बौद्ध साहित्य में सम्राट् अशोक की। सम्भवतः सम्प्रति का साम्राज्य पश्चिम में उज्जैन तक फैला हुआ था। डा० स्मिथ की कल्पना है कि यह भी सम्भव है कि अशोक के बाद उस के विशाल साम्राज्य के दो भाग कर दिए गए हों और उस के दोनों पोते उन पर राज्य करने लगे हों। पूर्वोक्त भाग का शासक दशरथ नियुक्त हुआ हो और उस की राजधानी पाटलिपुत्र ही रही हो। उधर उज्जैन राजधानी वाले पश्चिमी भाग का शासक सम्प्रति नियुक्त हुआ हो। हमारी राय में डा० स्मिथ की कल्पना के लिए कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।

प्राचीन साहित्य में मौर्य वंश के अन्य भी अनेक राजपुत्रों का बयान है। पोलिबियस ने मौर्य कुमार सुभगसेन का नाम गान्धार के शासक के रूप में लिखा है। इन नामों में अनेक एक ही पुरुष से व्यक्त भी हैं। मौर्य वंश का अन्तिम राजा बृहद्रथ था। उस के प्रधान सेनापति पुण्ड्रिच ने उसका वध कर दिया और पाटलिपुत्र में शुंगवंश का नींव डाली।

पाटलिपुत्र में मौर्य वंश के नष्ट हो जाने पर भी भरतपुर के अनेक भाग पर मौर्य राजपुरुषों का शासन बना रहा। इनो तरह के एक मौर्य राजा का उल्लेख आठवें सदी के एक शिलालेख में भी उपलब्ध होता है। प्रसिद्ध बालुक्य और यदव के शिलालेखों में भी कतिपय मौर्य राजाओं का बयान है। चना खान खान ने भी मगध के एक मौर्य राजपुत्र का बयान किया है।

प्रतीत होता है कि अशोक के दशान्त के २५ वर्ष बाद ही मौर्य राजांनी आक्रान्ताओं ने भारतवर्ष के साम्राज्य को ध्वस्त कर

पुस्तक संख्या

विषय सूची एवं पृष्ठ संख्या का सूचीबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है।

| | | |
|----|---------------|-------|
| 1 | पुस्तक संख्या | 1-10 |
| 2 | विषय सूची | 11-20 |
| 3 | पृष्ठ संख्या | 21-30 |
| 4 | ... | ... |
| 5 | ... | ... |
| 6 | ... | ... |
| 7 | ... | ... |
| 8 | ... | ... |
| 9 | ... | ... |
| 10 | ... | ... |
| 11 | ... | ... |
| 12 | ... | ... |
| 13 | ... | ... |
| 14 | ... | ... |
| 15 | ... | ... |
| 16 | ... | ... |
| 17 | ... | ... |
| 18 | ... | ... |
| 19 | ... | ... |
| 20 | ... | ... |

दिया था। क्रमशः जालुक ने अपना राज्य कन्नौज तक बढ़ा लिया था। एक और राजपुत्र वीरसेन ने गान्धार में अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। ग्रीक लेखकों के अनुसार वीरसेन के बाद उसका पुत्र सुभगसेन गान्धार का राजा बना। डा० स्मिथ की यह स्थापना निराधार है कि सुभगसेन केवल काबुल की घाटी का ही शासक था। एक प्राचीन ग्रीक लेखक ने उसे भारतीय राजा लिखा है। "पोलीबस के लेखों से यह सिद्ध नहीं होता कि सुभगसेन को सीरिया के राजा ने पराजित कर दिया, अथवा वह उसके अधीन था।" वास्तव में वह ग्रीक राजा एरिथ्रोऊस का समान स्थिति वाला मित्र था।

मौर्य साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक था। अतः राजधानी से बहुत दूर के प्रान्तों पर दृढ़ नियन्त्रण रख सकना उतना आसान नहीं था। सम्राट् विन्दुसार के शासनकाल में ही तक्षशिला में जिस क्रान्ति का प्रयत्न किया था, उसका वर्णन यथास्थान किया जा चुका है। अशोक के शासन काल में भी तक्षशिला में पुनः क्रान्ति करने का प्रयत्न किया गया था। इस क्रान्ति का कारण भी राजकर्मचारियों के प्रति जनता का तीव्र असन्तोष ही था। इस बार अशोक ने युवराज कुशाल को तक्षशिला भेजा। तक्षशिला के निवासियों ने उसका द्वाविक स्वागत किया। परन्तु अशोक ने उत्तराधिकारियों के लिए इस तरह की क्रान्तियों का उन्मूलन करना सम्भव नहीं रहा। कलिंग युद्ध के बाद सम्राट् अशोक ने युद्ध बन्द कर दिए थे, अतः साम्राज्य की नैतिक शक्ति क्षय पड़ती गई। चन्द्रगुप्त मौर्य ने आचार्य चाणक्य की सहायता से जिन राजदरार विशाल मागध साम्राज्य की स्थापना की थी, वह प्रथाएँ और धर्म

वर्ष १९५०

१. कृषि (१० लाख)
२. शिक्षण (५ लाख)
३. आरोग्य (३ लाख)

४. रक्षा (२ लाख)
५. विद्युत (१ लाख)
६. परिवहन (१ लाख)
७. अन्य (१ लाख)

८. कुल (२३ लाख)

९. अनुमानित व्यय (२३ लाख)

कला कहना चाहिए। परन्तु यह कला भी बहुत परिष्कृत और उन्नत है। नियमों की दृष्टि से भी यह कला बहुत श्रेष्ठ है। इस कला के पीछे लम्बी चौड़ी परम्परायें विद्यमान हैं। तथापि स्तम्भों की कला के मुकाबले में इस कला का स्थान उतना ऊँचा नहीं।

स्तूप—बौद्ध सन्तों के अवशेषों को रखने तथा उनकी स्मृति को स्थिर बनाने के लिए ईंटों और पत्थरों के अनेक विशाल स्तूपों का निर्माण किया गया था। कहा जाता है कि अशोक ने कुल मिला कर ८४००० बड़े-बड़े स्तूपों का निर्माण करवाया था। यह संख्या बहुत बड़ी प्रतीत होती है, परन्तु हमें ज्ञात है कि अशोक एक महान् निर्माता था। सातवीं सदी में चीनी यात्री ह्वान च्वांग ने भारतवर्ष और अफ़ग़ानिस्तान में इस ढंग के सैकड़ों स्तूपों को देखा था। परन्तु आजकल उन में से थोड़े ही स्तूप बाकी हैं। यह माना जाता है कि साची के विशाल स्तूप का निर्माण सम्राट अशोक ने ही करवाया था।

भारतवर्ष के जीवन के प्रत्येक—राजनीतिक, धार्मिक और कला सम्बन्धी—पक्ष पर मौर्यकाल की गहरी और स्थिर छाप पड़ी। मौर्य साम्राज्य का विनाश हो गया, परन्तु उसकी कृतियाँ अमर हो गई। उसका बाद भारतवर्ष में पुनः अच्यवस्था और विच्छेद का युग प्रारम्भ होना है और यह युग करीब चार शताब्दियों तक, गुप्त साम्राज्य की स्थापना से पूर्व तक, कायम रहता है।

ग्रीक आक्रान्त—शुंगवंश के समय की सब से बड़ी घटना भारतवर्ष पर ग्रीक आक्रान्त है। इस आक्रान्त का वर्णन पावंजलि और कालिदास ने किया है। गार्गी संहिता में भी इस का उल्लेख है। इस आक्रान्त का संक्षिप्त वर्णन आगे चल कर किया जायगा। यह ग्रीक आक्रान्ता नीनान्डर था। भारतवर्ष के अनेक भागों से उस के सिन्धु प्राप्त हुए हैं, भारतीय साहित्य में उस का उल्लेख भी है, अतः सम्भव है कि नीनान्डर भारतवर्ष में कहीं दूर तक आगे बढ़ गया हो। कालिदास के अनुमान सत्राट् पुष्यमित्र के पौत्र ने सिन्धु नदी के तट पर नीनान्डर को हरा दिया। उस गार्गी संहिता के अनुसार घर में हा कोई उपद्रव खड़ा हो जाने के कारण, ग्रीक आक्रान्ता स्वयं ही अपने देश को लाट गए।

उपनिष—ग्रीक आक्रान्तार्यों के लौट जाने के बाद पुष्यमित्र समूची मध्यदेश का शासक बन गया। उस ने विदर्भ को हराया। उस के बाद ग्रीक आक्रान्तार्यों को भारतवर्ष से निकाला। इन दोनों महत्वपूर्ण विजय के बाद उस ने सुप्रसिद्ध प्रहस्यय यज्ञ करने का निश्चय किया। कुछ लोग पुष्यमित्र के प्रहस्यय को शकट प्रतिस्ठिता का एक उदाहरण मानते हैं। बाद के अनेक राजवंशों में पुष्यमित्र को अत्याचारी और ब्राह्मण पर तुल्य करने वाला पौरुष है। परन्तु उस सुगवर्ष के समय मनुष्य का सुप्रसिद्ध ब्राह्मण स्वरूप बनाया गया, उस का सम्बन्ध ग्रीकों का शत्रु है यह सब संभव नहीं होसकता। यह सम्भव है कि ग्रीक लोग के हार में राजनीतिक शक्ति के जन केने के बाद पुष्यमित्र ने कुछ दरवाजों को कठोर मनोवृत्ति दिखाई हो।

निया। हेलिओडोरस (Heliodoros) के वेननगर मिलानेय में प्रतीत होता है कि मुंगवंश के प्रतिनिधि विदिशा के शासक ने अपनी राजधानी में लक्षशिला के भारतीय-ग्रीक राजा के दूत को निमन्त्रित किया था।

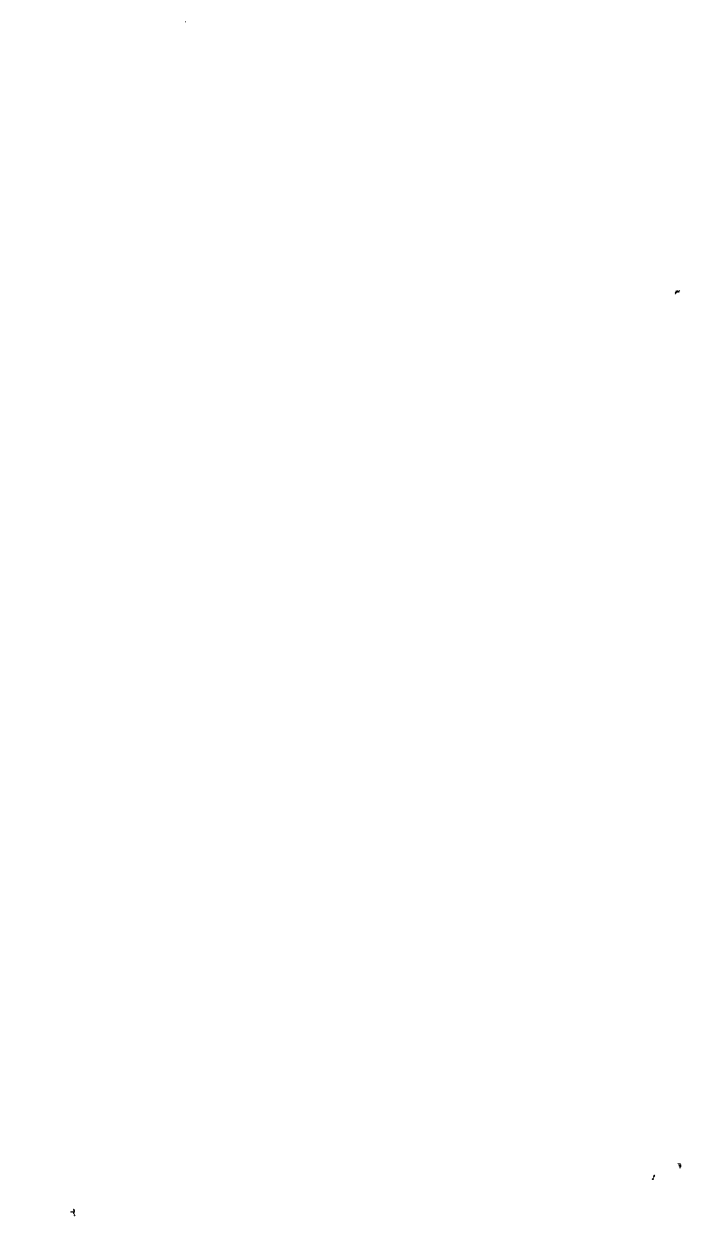
मुंगवंश का अन्तिम राजा देवभूति था। हमने मन्त्री वासुदेव ने उस की हत्या कर दी। मुंगवंश ११२ वर्षों तक शासन रहा।

मुंगवंश के बाद, चार शताब्दियों के लिए, जंगल का शासन-लक्ष महत्ता जाती रही। परन्तु बड़े बौद्ध साहित्य, सिद्धांत और राष्ट्रों का केन्द्र पट्टणे ही का शासन बना रहा।

महाराज वासुदेव—मुंगवंश के शासनकाल में अनेक वर्षों में धार्मिक साहित्यिक और सामाजिक कार्य के लिए बहुत कुछ किया गया। विशेषतः बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा और प्रेम के कारण बड़े-बड़े विद्वानों का आगमन हुआ। वे प्रमाणित हुए कि वे अपने-अपने देशों में अपने-अपने शासकों के लिए बड़े-बड़े विद्वानों का आगमन कराया। वे अपने-अपने देशों में अपने-अपने शासकों के लिए बड़े-बड़े विद्वानों का आगमन कराया। वे अपने-अपने देशों में अपने-अपने शासकों के लिए बड़े-बड़े विद्वानों का आगमन कराया।

इस प्रकार मुंगवंश के शासनकाल में अनेक वर्षों में धार्मिक साहित्यिक और सामाजिक कार्य के लिए बहुत कुछ किया गया। विशेषतः बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा और प्रेम के कारण बड़े-बड़े विद्वानों का आगमन हुआ। वे प्रमाणित हुए कि वे अपने-अपने देशों में अपने-अपने शासकों के लिए बड़े-बड़े विद्वानों का आगमन कराया।

इस प्रकार मुंगवंश के शासनकाल में अनेक वर्षों में धार्मिक साहित्यिक और सामाजिक कार्य के लिए बहुत कुछ किया गया। विशेषतः बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा और प्रेम के कारण बड़े-बड़े विद्वानों का आगमन हुआ। वे प्रमाणित हुए कि वे अपने-अपने देशों में अपने-अपने शासकों के लिए बड़े-बड़े विद्वानों का आगमन कराया।



1000000

1





गण । इन विदेशी राजवंशों को भारतीय-ग्रीक, भारतीय-पैरियस और भारतीय-पार्थियन कहा जाता है । इस काल में भारत सीमाप्रान्त पर शासन करने वाले दो ग्रीक राजवंशों की सत्ता प्रमाणा हमें उपलब्ध होती है । यह प्रमाण तत्कालीन सिक्कों के रूप में हैं, जिन पर ग्रीक तथा भारतीय भाषाओं में इन शासकों के नाम सुरक्षित हैं और ये सब नये सभ्यता में प्राप्त हुए हैं । वंशों के ४५ राजाओं के नाम उपलब्ध हो चुके हैं ।

भारतीय-पैरियस—वैक्ट्रिया (वर्तमानबन्द) अपना भौगोलिक अवस्थिति के कारण स्वभावतः एशिया के उत्तिहाम में बहुत महत्वपूर्ण भाग ले सकता था । अपनी भौगोलिक अवस्थिति के कारण वैक्ट्रिया को भारतवर्ष के मार्ग का कुत्तो कहा जा सकता था । मध्य एशिया के अनेक मार्ग वैक्ट्रिया से होकर ही जाते थे । सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व वह नगर पूर्वीय एशिया की राजधानी था । अन्य सम्पूर्ण एशिया के समान वैक्ट्रिया भी सिकन्दर के अधीन हो गया और उसने इसी नगर का भारतवर्ष पर किए जाने वाले अपने आक्रमण का आवार बना लिया । सिकन्दर के बड़े बड़े आयोजनों की पूर्ति में यह नगर बीच की श्रृंखला का काम करता था, स्वभावतः बहुत शीघ्र यह एक महत्वपूर्ण ग्रीक उपनिवेश बन गया । अपनी स्वाधीनता घोषित करने तक वैक्ट्रिया सीरियन साम्राज्य का भाग बन कर रहा ।

डैमेट्रियस (Demetrius)—सीरियन राजा का अधीनता से निकल कर वैक्ट्रियन शासक ने भारतवर्ष पर अपनी निगाह डाली । सन् १६० ईसापूर्व से १८० ईसापूर्व तक वैक्ट्रिया के शासक डैमेट्रियस ने पंजाब, सिन्ध और सुराष्ट्र के बहुत से भाग जीत

7





0
1
2
3
4
5
6
7
8
9

पूनी आगेविलास (Agasilos) आदि विद्वानों का भी इनके संरक्षक था।

इनके के उत्तराधिकारी—कनिष्क के बाद उत्तका पुत्र हुविष्क कुरान राज्य का अधिपति बना। उसने सन्भवतः २० वर्ष राज्य किया होगा। उसके सिक्के भी उसके पिता के सिक्कों के समान कलापूर्ण और सुन्दर हैं और उन पर भी अनेक देवता कहे हैं। कारनीर में एक नगर और एक भिक्षुसंघ के नाम हुविष्क नाम पर रखे गये। सम्भव है कि हुविष्क ने भी अपने पिता के साम्राज्य पर अपना अधिकार बनाए रखा हो। हुविष्क की प्रवृत्तियां हिन्दु प्रतीत होती हैं और यह भी मान्य होगा है कि वह शिव और विष्णु का उपासक था। उसने अपने पुत्र का नाम भी वालुदेव रखा।

हुविष्क के पुत्र वालुदेव के शासनकाल में कुरान साम्राज्य का पतन शुरु हुआ। कुशान साम्राज्य के इस पतन का सम्बन्ध गौतमी सदी ईसवी में फारस के ससानिया राजवंश के उत्थान के साथ भी जोड़ा जा सकता है। कुशान साम्राज्य के नष्ट हो जाने पर भी काबुल घाटि में पाबवी सदी ईसवी के दूरों के शाकभय तक, कुशानवशीय राजा राज्य करते रहे। उसके बाद भी छोटे-छोटे विभिन्न कुशान राजाओं के द्वारा-द्वारा में राज्य सन्तुष्टी सदी ईसवी में खरमों के फारस विजय तक दने रहे।

विदेशियों का शीघ्र एकीकरण—यह देखा कर आश्चर्य होता है कि इस युग में विदेशी आक्रान्ता इस देश को जीत कर भी यहाँ की सम्पत्ता और संस्कृति से इतना अधिक प्रभावित हो गए कि शीघ्र ही उनमें और भारतीय भाषाओं में

उत्तरीय बौद्धों ने महायान सम्प्रदाय के रूप में मौलिक बौद्ध धर्म में अनेक परिवर्तन कर दिए। एक तरह से कहना चाहिए कि उन्होंने बौद्ध धर्म का पूरा स्वरूप ही बदल दिया। महायान सम्प्रदाय में मनुष्य से ऊपर, चमत्कारपूर्ण शक्तियों की सत्ता स्वीकार की जाने लगी। बुद्ध को उन्होंने परमात्मा का रूप दे दिया। यह बुद्ध प्रत्येक प्राणी के अन्तर में विद्यमान रहता है। बोधिसत्वों के रूप में बुद्ध के अनेक अनुचरो को मान लिया गया। ये बोधिसत्व पारंगत मनुष्यों और बुद्ध के बीच में दूत का काम करते हैं। सभी बोधिसत्व प्रायः प्राचीन हिन्दू देवता थे, महायान बौद्धों ने उनका नाम बदल कर उन्हें अपना लिया। बुद्ध की सत्ता विश्वास, ध्यातव्य और योग द्वारा देखी जा सकती है। यह योग की पद्धति पातंजलि के योगदर्शन पर आश्रित है। वैदिक विचारों के अनुसार योग एक ऐसा मनोवैज्ञानिक अध्यवसाय है, जो मनुष्य को सच्चे आध्यात्मिक प्रकाश की ओर ले जाता है। महायान सम्प्रदाय ने भक्ति मार्ग को भी स्वीकार कर लिया। यह भक्ति मार्ग उन दिनों सर्वप्रिय हो रहा था। महायान सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव का परिणाम यह हुआ कि महात्मा बुद्ध का मूर्ति का पूजा गुरु हो गई। महात्मा बुद्ध का पिछले जन्म का कथा-जातक कथा-आ तथा जीवन वृत्तान्त का आधार पर पत्थर, ताम्बा और काँच की लाखों-कराहों मूर्तियाँ घड़ डाली गईं। इन मूर्तियों का अर्थ-प्रकाश मूर्तियों का निर्माण गांधार शिल्पकला का आधार पर किया गया। इन मूर्तियों का देखन से ज्ञात होता है कि सर्वसाधारण जनता का हृदय ने बौद्ध धर्म को किस गहराई से अपना स्वीकार किया था। प्रारम्भिक बौद्ध प्रचारका न अरुण गुरु का

उत्तरीय बौद्धों ने महायान सम्प्रदाय के रूप में मौलिक बौद्ध धर्म
 में अनेक परिवर्तन कर दिए। एक तरह से कहना चाहिए कि
 उन्होंने बौद्ध धर्म का पूरा स्वरूप ही बदल दिया। महायान
 सम्प्रदाय में मनुष्य से ऊपर, चमत्कारपूर्ण शक्तियों को सत्ता स्वी-
 कार की जाने लगी। बुद्ध को उन्होंने परमात्मा का रूप दे दिया।
 यह बुद्ध प्रत्येक प्राणी के अन्तर में विद्यमान रहता है। बोधिसत्वों
 के रूप में बुद्ध के अनेक अनुचरो को मान लिया गया। ये बोधिसत्व
 प्राणी मनुष्यों और बुद्ध के बीच में दूत का काम करते हैं। सभी
 बोधिसत्व प्रायः प्राचीन हिन्दू देवता थे, महायान बौद्धों ने उनका
 नाम बदल कर उन्हें अपना लिया। बुद्ध को सत्ता विश्वास,
 ध्यानचिन्तन और योग द्वारा देखी जा सकती है। यह योग की
 पञ्चवि पातंजलि के योगदर्शन पर आश्रित है। वैदिक विचारों
 के अनुसार योग एक ऐसा मनोवैज्ञानिक अध्यवसाय है, जो मनुष्य
 को सच्चे आध्यात्मिक प्रकाश की ओर ले जाता है। महायान
 सम्प्रदाय ने भक्ति मार्ग को भी स्वीकार कर लिया। यह भक्ति मार्ग
 उन दिनों सर्वप्रिय हो रहा था। महायान सम्प्रदाय के प्रारम्भिक
 ही परिष्कारण यह हुआ कि महात्मा बुद्ध का नृत्ति का मूला मुक्त
 हो गई। महात्मा बुद्ध के पिछले जन्मों का कदाञ्च-जातक कथा-
 श्रवण तथा जीवन वृत्तान्त के आधार पर पत्थर के स्तूप और काँच
 की लाखा-करांडा मूर्तियाँ बनें डाली गई। इन मूर्तियों के अङ्कन
 मूर्तियों का निनायक गांधार (अफ़ग़ानिस्तान) के आगर पर आकर गया।
 इन मूर्तियों को देखने से ज्ञात होता है कि सर्वसाधारण
 जनता के हृदय में बौद्ध धर्म ने किस गहराई तक अपना स्थान
 बना लिया था। प्रारम्भिक बौद्ध प्रचारका न अवन मुक्त का

महायान बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय के देवताओं में सम्मिलित कर लिए गए।

इतिवृत्त की संरक्षकता में ही बौद्ध धर्म में ये परिवर्तन आये। इतिवृत्त से साथ, पाटलिपुत्र की बजाय गान्धार बौद्ध धर्म का केन्द्र बन गया। इस का परिणाम यह हुआ कि संघ का नियन्त्रण, जिसने अवश्य ही बौद्ध धर्म के इन परिवर्तनों का तीव्र विरोध किया होगा, ढीला पड़ गया। जब तक मगध बौद्ध धर्म का केन्द्र रहा, वहाँ के भिक्षु संघ ने बौद्ध धर्म में परिवर्तन करने का प्रयास नहीं किया। परन्तु दूर प दोहा पर संघ का यह नियन्त्रण और प्रभाव सम्भव नहीं था। गान्धार में बौद्ध धर्म ने मूर्तिपूजा आदि अनेक विदेशी प्रवृत्तियाँ वा भू-देवी-पूजाओं के साथ अपना लिया।

साथ ही, यह आवश्यक था कि विदेशी प्रभाव होने के कारण ही, बौद्ध धर्म का रूप भी बदल गया। बौद्ध धर्म का विकास निम्नलिखित प्रभाव से पूर्वोक्त भारत में हुआ। अतः यह आवश्यक था कि अन्वेषण में प्रयत्न करने के लिए, उसमें उन देशों का अध्ययन करना पड़ेगा जहाँ बौद्ध धर्म परिवर्तन प्राप्त हुआ।

बौद्ध धर्म का विकास — बौद्ध धर्म का यह विकास केवल भारत में ही नहीं हुआ था। बौद्ध धर्म का विकास केवल भारत में ही नहीं हुआ था। बौद्ध धर्म का विकास केवल भारत में ही नहीं हुआ था।

बौद्ध धर्म का विकास केवल भारत में ही नहीं हुआ था। बौद्ध धर्म का विकास केवल भारत में ही नहीं हुआ था।

पैरीप्लस के लेखक ने दक्षिण के कतिपय अन्य बन्दरगाहों तथा तामिल मार्गों का वर्णन भी किया है। केलरपुत्र के प्रमुख बन्दरगाह मुज़िरिस पर उसके रद्दी लङ्गरों के कारण यात्री नहीं जाते थे। कोचीन का नेलकुण्डा (नीलकण्ठ) उन दिनों काली मिरचों के व्यापार के कारण भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध था। मानसून के आविष्कार के बाद यह बन्दरगाह भारतवर्ष का सब से बड़ा बन्दरगाह बन गया और इसकी महत्ता भृगुकच्छ से भी बढ़ गई। इस बात के भी यथेष्ट प्रमाण हैं कि पश्चिमी भारत के इन बन्दरगाहों के निकट यूनानियों के वाक्कायदा उपनिवेश-से बस गये थे।

पैरीप्लस में भारत के पूर्वोत्तर समुद्रतट के बन्दरगाहों का भी वर्णन है, यद्यपि उसका लेखक तामिल के पार नहीं गया। कोरो-

७. समुद्रतट के प्रमुख बन्दरगाह कमारा, जो कावेरी के दहाने था, पाडुका (वर्तमान पाण्डीचरी) और सोमना (सुपत्तन)

। इन सब का व्यापार, विशेष कर गङ्गा नदी की घाटी में उत्पन्न पदार्थों, मलमल और मोतियों की बड़ी निर्यात के कारण उन्नत दशा में था। बङ्गाल के जहाज़ इन बन्दरगाहों पर प्रायः आते जाते थे। मुसलीपटम जिले के मसालिया बन्दरगाह से मलमल बड़े परिणाम में बाहर जाता था और उड़ीसा के दर्शन नामक स्थान से हाथी दात का सामान। ताम्रलिप्ति का बन्दरगाह गङ्गा के दहाने पर अवस्थित था।

प्राचीन भारत और पश्चिम

हम इस अध्याय में जिस युग का अनुशीलन कर रहे हैं, उससे करीब ८०० वर्ष पहले, अर्थात् देरियस के जमाने में और पश्चिम में सम्वन्ध कायम था। भारत और

पश्चिम की संस्कृतियों पर इस सम्बन्ध का क्या प्रभाव पड़ा यह बात अध्ययन का एक मनोरंजक विषय है। विद्वानों में इस प्रश्न की चर्चा बहुत समय से है और इस सम्बन्ध में उनमें परस्पर भारी मतभेद भी हैं।

सिकन्दर से पहले पश्चिम के सम्बन्ध—सिकन्दर से पहले भारत-वर्ष और यूनान में परोक्ष सम्बन्ध ही था। अतः इस सिद्धान्त पर विश्वास कर सकना उतना आसान नहीं कि पैथागोरस ने अपने दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त भारतीय दर्शनों से लिए, यद्यपि उन दोनों में पर्याप्त समानता प्रवश्य है। दोनों पुनर्जन्म को मानते हैं दोनों शराब और मांस के विरुद्ध हैं, इत्यादि। यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि सिकन्दर के आक्रमण ने पूर्व तक ग्रीस और भारतवर्ष एक दूसरे के साहित्य में नवजात सन्धि रखे हों और उन पर एक दूसरे का कोई प्रभाव न पड़ा हो। दोनों देशों के व्यापारिक सम्बन्ध निम्नस्वरूप बहुत प्राचीन थे परन्तु सम्भव है कि इन व्यापारिक सम्बन्धों का प्रभाव उनकी संस्कृति पर न पड़ा हो। व्यापारिक पदार्थों को एक देश से दूसरे देश में ले जाना न व्यापारिक भाग में बदलना जानना और व्यापारिक लक्ष्य नहीं होना ये व्यापारी लक्ष्य अन्य देशों में जन्म देने के लिए व्यापारिक सम्बन्धों का और ध्यान नहीं देना ये व्यापारिक लक्ष्य भारतवर्ष की संस्कृति पर कितना विदेशी संस्कृति का प्रभाव पड़ा है यह भारतवर्ष की संस्कृति का ध्यान करके और भारतवर्ष की संस्कृति का ध्यान करके ही जाना जा सकता है।

यद्यपि सिकन्दर के आक्रमण ने भारत-वर्ष की संस्कृति पर यूनानी संस्कृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, यह नि

होने देते थे। यदि उन दिनों कभी भारतीय धर्म पर कोई विदेशी प्रभाव पड़ा भी, तो वह कुछ अंश तक बौद्ध धर्म पर ही। स्मिथ का कथन है कि "उन दिनों भारती-यूनानी राजा ही हिन्दू धर्म के प्रभाव में आते चले जा रहे थे, हिन्दू राजाओं पर यूनानी संस्कृति का प्रभाव नहीं पड़ रहा था।"

कुशानकाल में कई तरह से भारतवर्ष पर यूनानी संस्कृति का प्रभाव पड़ा भी था। कुशान राजाओं ने एशिया माइनर से अनेक यूनानी शिल्पियों को इस देश में बुलाया। पेशावर के एक प्राचीन लेख में कनिष्क के विहारों के निरीक्षक का नाम आगेसिलाओस (Agesilaos) लिखा है। इस तरह उत्तर-पश्चिमी भारत की कला पर यूनानी-रोमन कला का प्रभाव पड़ना शुरु हुआ और अनेक सदियों तक यह प्रभाव बना रहा। तीसरी सदी ईसवी में फारस में ससानियां वंश के उदय के बाद, भारतवर्ष और यूनान में सिवाय समुद्र के व्यापारिक सम्बन्धों के, अन्य कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था।

यूनान और भारतवर्ष का जो सम्बन्ध इन अनेक सदियों में बना रहा, उसके प्रभावों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है।

१. — भारतीय कला पर जो यूनानी प्रभाव पड़ा वह गहवार पद्धति में जान हो सकता है। इन यूनानी-रोमन पद्धतियों को बना जा सकता है। इन पद्धतियों में बौद्ध मूर्तियों को यूनानी जाना पढ़न पर नर रूप में खड़ा किया गया। इनके अतिरिक्त इनके अलावा वे समय में इसी पद्धति के अन्तर्गत बौद्ध मूर्तियों को बनाया गया है जो कि सम्पूर्ण रूपों का इतिहास

२५६

४२

४१

४०

४

४

,

४

४

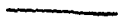
३

४

४

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ११ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १२ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १३ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १४ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १५ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १६ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १७ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १८ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १९ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २० ॥





करवा हुई होगी, क्योंकि कि भारतीय साहित्य में जहां भी समुद्रगुप्त का नाम उपलब्ध होता है, वहां उस के अश्वमेध का वर्णन भी अवश्य मिलता है।

समुद्र गुप्त का व्यक्तित्व—समुद्रगुप्त की प्रतिभा केवल युद्ध-क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं थी, वह शान्तिकाल के लिए भी एक बहुत सफल शासक था। उसके समय के जो सिक्के उपलब्ध हुए हैं, उन से उसकी विभिन्न विशेषताओं का परिचय मिलता है। किसी सिक्के में वह काठब पर बैठ कर भारतीय विनायक बजा रहा है। एक सिक्के में वह गौर से लड़ता हुआ दिखाई देता है। कुछ सिक्कों पर युद्ध की तुलहाडिया अंकित है, ये उस की विजय यात्राओं के चिन्ह हैं। अलाहाबाद की प्रकृति में समुद्रगुप्त के वैदिक गुरो का भी अश्वमेध वर्णन है वह एक महान् वैदिक श्रेष्ठ कवि का रूप में प्रजा न व. अश्वमेध नाम के प्रसिद्ध था

वह भी कतरना की जा सकने के कि कतरना इस प्रकार कि न
 हरेपल न र जनांक व वर न य कर हुए यो-म-म-उ न व न
 लिद हो परनु व न्मव न
 शोर ए न्म - २ ए
 एनं
 एन प्र
 एन
 एन
 एन
 एन

अयोध्या को अधिक अपनाते चले जा रहे थे । तथापि इस समय तक पाटलिपुत्र एक सम्पन्न नगर था । पाटलिपुत्र में एक बहुत बड़ा हस्पताल था, जो जनता के चन्दे पर चलता था । इसके अतिरिक्त वहाँ दो बौद्ध मठ भी थे, जो बौद्ध विद्या और सस्कृति के केन्द्र बने हुए थे । फाहियान ने भी अशोककाजीन राज-प्रासादों की विशालता, सुन्दरता और उनकी सजावट को प्रशंसा की है ।

बौद्ध धर्म का केन्द्र—मथुरा उत्तरीय भारत का एक बड़ा महत्वपूर्ण नगर था । वह बौद्ध धर्म का शिक्षा का महान् केन्द्र था । हीनयान और महायान, इन दोनों सम्प्रदायों के बौद्ध मथुरा में बड़ी शान्त और प्रेम के साथ रहते थे, उनमें परस्पर वैमनस्य के भाव नहीं थे । बौद्ध धर्म के अनेक प्रमुख स्थान अब तक नष्ट भ्रष्ट हो चुके थे । गया और कपिलवास्तु विलकुल उजड़ गये थे और श्रावस्ती एक छोटे-से गाँव के रूप में बच रहा था । मगध, कोशल और मथुरा के आसपास के प्रान्त अब बौद्ध धर्म का केन्द्र बने हुए थे । देश के सभी हिस्सों में अभी तक सुन्दर आकार के बौद्ध मठ काफ़ी बड़ी संख्या में बने हुए थे । इस युग में भिक्षु अपनी विद्या और तपस्यामय जीवन के लिए विशेष प्रसिद्ध थे । विद्या अभी तक ऋणस्थ ही का जाती थी ।

सरकार—सरकारी नियन्त्रण उतना कड़ा न था । कर भी हलके थे । राजकीय आय का अधिकांश भाग सरकारी भूमियों के भूमिकर से आता था । मौर्यकाल की अपेक्षा गुप्तकाल का इण्ड-विधान भी बहुत नरम था । फाँसी किसी को नहीं दी जाती थी । आवागमन खतरे से रहित था । फाँसी की सज़ा अज्ञात थी, इस

का अभिप्राय है कि उस युग में गुप्त सम्राटों का शासन इतना प्रभावशाली होगा कि कांसी की सजा देने की आवश्यकता ही नहीं रही होगी।

जनता की साधारण दशा—भारतीय जनता तब समझदार और नम्र थी। वर्णव्यवस्था के बन्धन फ़ोरे हो गये थे। बौद्ध शिक्षाओं के प्रभाव से अहिंसा का सिद्धान्त हिन्दू धर्म के आधार बूत सिद्धान्तों में आ गया था। कुछ अंश तक स्तूतपन भी गुरु हो गया था। बाण्डाल लोग जब किसी नगर में जाते थे तो अपने हाथ में लकड़ी का एक टुकड़ा ले लेते थे, ताकि पत्थर जमि उन में छूकर भ्रष्ट न हो जाए। बाण्डालों को शहर में बाहर रखने के लिये बाधित किया जाता था।

सब मिला कर भारतवर्ष के इतिहास में गुप्त सम्राटों के शासनकाल का युग असाधारण और नम्रपन का युग था। सरकार पक्षि नसतून और स्वर का रूप में उभरना नम्र पौमलन पृथक् । अत्यावर । कम । समी । स्थान ।

गुप्तवंश ।

के इस धर्म-परिवर्तन का प्रभाव उनकी सैनिक शक्ति को कमजोर बनाने का कारण हुआ होगा। इन्हीं सब बातों का परिणाम यह हुआ कि मौर्य साम्राज्य के समान गुप्त साम्राज्य भी बहुत शीघ्रता से विध्वंस हो गया।

बाद के गुप्त शासक—सन् ४६७ में स्कन्दगुप्त का देहान्त हो गया और उसके बाद गुप्त साम्राज्य के विध्वंस की रफ्तार और भी तेज होगई। तीसरी शक्ति होकर भी यह गुप्त वंश सातवीं सदी तक कायम रहा। पाँचवीं सदी के अन्तिम भाग में गुप्त साम्राज्य का विस्तार बंगाल से पूर्वोत्तर मालवा तक बढ़ रहा था। इसी सदी के पूर्वार्ध में लिखे गए एक लेख से ज्ञान होता है कि तब मध्यप्रान्त भी गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत था। पाँचवीं सदी का अन्त हो जाने पर गुप्त राज्य केवल मालवा तक ही सीमित रह गया। इस सदी के अन्त में गुप्त राज्य की सीमा नरह ने अन्तम के सीमान्त तक हो गई। उनसे बाद कुछ समय तक के लिए इस गुप्त राज्य को प्रताप दर्पवर्धन ने अपने अधीन कर लिया, परन्तु सातवीं सदी के उत्तरार्ध में आदिशयन ने नए गुप्तवंशीय राजा न अथन अपहृत राज्य का पुनर्स्थापन कर 'अन आदित्य' न अथन राज्य का विस्तार भी किया। वह एक शासक-शासक शासक था। उनसे अथमथ यह भी किया।

पश्चात् स्कन्दगुप्त के बाद सम्भवतः उत्तर-पूर्व में मगध राज्य की राजधानी पर देहा। प्रकीर्ण हुआ है। यह गुप्तवंश के अन्त में अथन राज्य बना। स्कन्दगुप्त का उत्तराधिकारी नरह था। नरह का उत्तर उत्तर ६ वर्ष बाद, सन् ४७३ में कुमारगुप्त ने अथन राज्य का अन्त पर शासन कर रखा था। इसका अन्त देहा है।

है। इसी बीच में तुर्क लोगों ने एशिया में से हूण शक्ति का नारा कर दिया।

हूण आक्रमण के प्रभाव—भारतवर्ष पर हूण आक्रमण बहुत देर तक जारी नहीं रहे। इस देश में हूण लोगो का शासन बहुत थोड़ी देर तक रहा और वे भारतवर्ष के हृदय तक पहुँच भी नहीं पाए। तथापि उत्तर-पश्चिमी भारत के इतिहास पर इन हूण आक्रमणों का गहरा प्रभाव पडा। हूणों के भयंकर आक्रमणों से टकर खाकर गुप्त साम्राज्य की शक्ति बहुत कमजोर पड गई और इस कारण शीघ्र ही गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस समय, भारतवर्ष में केन्द्रीय शक्ति फें ली गयी जाने के बाद सन्पूर्व देश छोटे-छोटे राज्यों में बट गया और सुमरुमानों के भारतवर्ष में आन तक, वहा का कोई राज्य, कुछ अववादों को छोड कर, केन्द्रीय शक्ति का रूप धारण नहीं कर सका। तारमान ने भारतीय खिताबों का व्यवहार शुरु कर दिया था। उनका कूर पुत्र मिहिरगुल भी शिव का उपासक था। यह स्पष्ट है कि हूणों के आक्रमण के दिनों में जो लाया हूण इन देश में आकर आजाद हो गए थे वे भारतवर्ष में हूण राज्य नष्ट हो जाने पर, प्राचीन भारतीय-गोत्र, शक्ति और कुशात के सन्तान इन्द्र जन्म का ही भाग बन गए। उन्होंने भारतीय सभ्यता की पूरक रूप में धरणा लिया। ये नए लोग के हूण बाद में जाकर भारत वसना के लिए दबे-पचाना सिद्ध हुए। उनके ऐतिहासिक का विचार है कि वे कपूर तथा पश्चिमी भारत का जन्म अनेक जातियाँ इत्यादि हूणों की सन्तान है। यह भी उदाहरण दिया जाता है कि इनके जोर ससन्ध हूणों की धरणा समाज का भाग बना पर शिरदुर्गों

1870

1

2

3

तब हर्ष ने बौद्ध संघों और मठों को दान दिया। हर्ष ने पशुदत्या
 कानून बना कर बन्द कर दी। उसकी अध्यक्षता में बहुत शीघ्र
 कर्त्तव्य बौद्ध धर्म का एक महान् केन्द्र बन गया। हर्ष ने कर्त्तव्य
 को सुन्दर बनाने की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया। उसने नगर
 के चारों ओर मज्जवृत किलेबन्दी करवा दी।

प्रयाग में सभाएं—स्वयं बौद्ध होते हुए भी हर्ष का अन्य
 धर्मों से विरोधभाव नहीं था। अपने शासनकाल में प्रति पाँचवें
 वर्ष वह एक महामत्सा बुलाता था और इस महामत्सा में मुठ के
 सामान के अनिश्चित अन्य मूल्य प्रकार का सामान दान
 करता था। एक ऐसी ही महामत्सा के अवसर पर प्रयाग में
 पाँच लाख मनुष्य जमा हो गए थे। महामत्सा के दिना में मुठ और
 और मूल्यों की मूर्तियों की पूजा की जाती थी और विष्णु का प्रार्थना
 तथा कर्त्तव्यों का यथेष्ट दान दिया जाता था।

राजा हर्ष जिन्होंने इन अवसर पर नगर में बहुत से मठों का
 अवसर पर उन मठों को जो धर्म के प्रचार के लिये
 स्वयं निष्कृत करिष्ठ के लिये नगर में

की अन्य बहुत-सी वस्तुओं को वह अपने साथ ले गया और अपना शेष जीवन उसने संस्कृत ग्रन्थों का चीनी अनुवाद करने में बिता दिया। ह्यूनसाँग का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावोत्पादक था। वह एक महान् विद्वान्, महान् सन्त, महान् नेता और महान् यात्री था। वह लेखक भी बहुत उच्चकोटि का था। उसने इस देश में जो कुछ देखा, उसका विस्तृत वर्णन उसने लिखा है। ह्यूनसाँग का ग्रन्थ प्राचीन भारतीय इतिहास के लिये एक अमूल्य खान के समान है। भारतीय इतिहास पर ह्यूनसाँग का अपरिमेय ऋण है।

ह्यूनसाँग का वृत्तान्त—हर्ष के समय में कन्नौज भारतवर्ष का सबसे अधिक महत्वपूर्ण नगर था। पाटलिपुत्र उजड़ चुका था। शासनव्यवस्था दृढ़ और न्यायपूर्ण थी। अपराध बहुत कम होते थे परन्तु अपराध के लिए दण्डविधान गुप्तकाल की अपेक्षा बहुत कठोर थे। कर हलके थे। उपज का छठा भाग भूमिस्वर के रूप में लिया जाता था। फाहियान के समय की अपेक्षा इस युग में आवागमन कम सुरक्षित हो गया था।

जनता की दशा—इस युग में साम्प्रदायिकता बहुत कम थी। जनता में आचार की प्रातप्ता सबसे अधिक थी। व्यक्तिगत पवित्रता का माप बहुत ऊँचा था। माँस बहुत कम खाया जाता था। कुलीन स्त्रियों को खूब ऊँची शिक्षा दी जाती थी। पर्दा विलकुल नहीं था। स्ती प्रथा ज़ोरो पर थी। अन्तवर्ण विवाह विलकुल नहीं होते थे। सरकार का नियन्त्रण ऊँचे दर्जे का था, यद्यपि मौर्यकाल और गुप्तकाल के समान दृढ़ और देशव्यापी शासनव्यवस्था अब नहीं रही थी।

व्यवसायिक जीवन का नियन्त्रण सधो के आधार पर किया

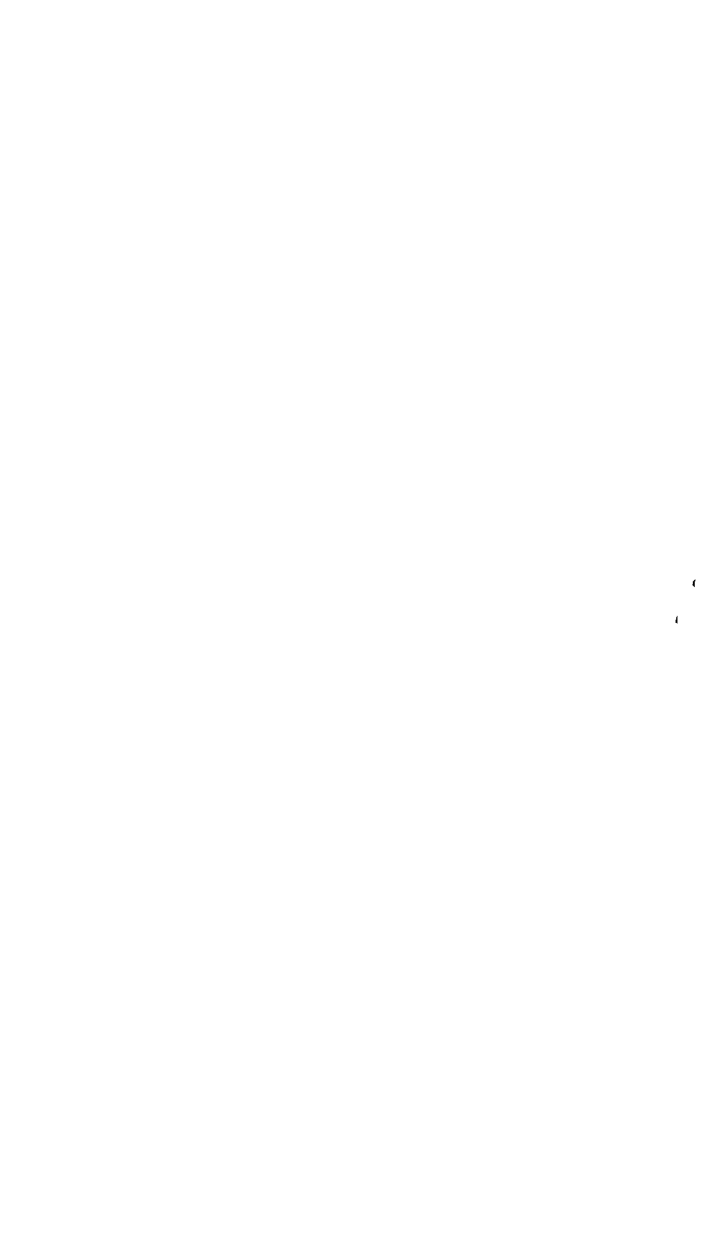
जाता था। राजनीतिक और व्यापारिक उद्देश्यो से समुद्र की यात्रा करना अब एक साधारण और प्रचलित बात हो गई थी। शिक्षा का खूब प्रसार था। सभ्य श्रेणियों, जिनमें बौद्ध भी सम्मिलित थे, की भाषा संस्कृत थी। नालन्द तथा अन्य अनेक स्थान विद्या और कला का केन्द्र बने हुए थे।

ह्यनसांग ने भारतीयों का वर्णन बड़े सम्मान के साथ किया है। फाहियान के समान उसका दृष्टिकोण संकुचित नहीं था, इस लिए उसके वर्णनों की महत्ता बहुत अधिक है और उन से बहुत-सी महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं। बौद्ध मूर्ति कला उत्तार पर था। उसका महान् केन्द्र गान्धार अब उजड़ गया था। आसाम का राजा कट्टर हिन्दू था और दक्षिण भारत में इन दिनों जैन धर्म बढ़ती पर था। पाटलिपुत्र के अतिरिक्त गया का भी विनाश हो चुका था।

ह्यनसांग ने लिखा है कि भारतीयों को पढ़ने लिखने का शौक है, उनकी शिक्षापद्धति बड़ी सङ्गठित है। पढाई में अभी तक स्मरण शक्ति से अधिक काम लिया जाता था। बौद्ध मठ शिक्षा केन्द्र बने हुए थे। ह्यनसांग ने नालन्द विश्वविद्यालय का वर्णन खूब विस्तार के साथ किया है। नालन्द हर्षकालीन भारत का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था। वह महायान सम्प्रदाय का ओक्सफोर्ड तथा काशी का प्रतिद्वन्दी था।

राष्ट्रीय जागृति का युग

गुप्तवंश के शासनकाल को भारतवर्ष का स्वर्णयुग कहा जाता है। यह राष्ट्रीय जागृति का युग था। इन दिनों भारतीय सभ्यता



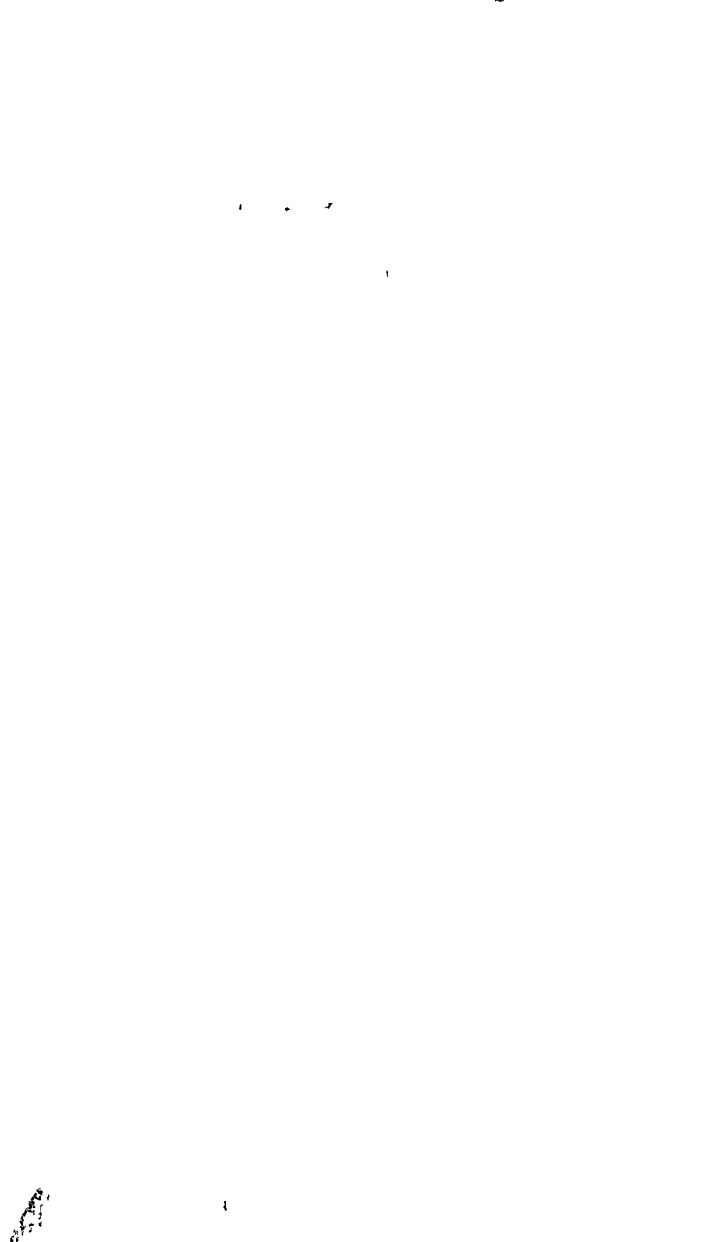
गया था। राजनीतिक और व्यापारिक उद्देश्यों से समुद्र की यात्रा करना अब एक साधारण और प्रचलित बात हो गई थी। सिन्धु का खूब प्रसार था। सम्य श्रेणियों, जिनमें बौद्ध भी सम्मिलित थे, की भाषा संस्कृत थी। नालन्द् तथा अन्य अनेक स्थान विद्या और कला का केन्द्र बने हुए थे।

एतन्नांग ने भारतीयों का वर्णन बड़े सम्मान के साथ किया है। पाटलियान के समान उसका दृष्टिकोण सवृचित नहीं था, इस लिए उसके वर्णनों की महत्ता बहुत अधिक है और उन महत्त्व-पूर्ण महत्त्वपूर्ण बातों ज्ञात होती हैं। बौद्ध नृनि कला चकार पर था। उसका महान् केन्द्र गान्धार अब उजड़ गया था। एतन्नांग का राजा बहुर हिन्दू था और दक्षिण भारत न इन जिन हैं। एतन्नांग की पर था। पाटलपुत्र न आवारण गया था भी। एतन्नांग का पुत्र था।

एतन्नांग ने लिखा है कि भारतीयों की परत १००० वर्षों से है। उनकी शिक्षापाठ्य बातें न लिखे हैं। पर १००० वर्षों से समस्त भारत में व्यापक मानसिकता का प्रसार हुआ है। एतन्नांग ने नालन्दा विश्व उच्च विद्यालय का वर्णन किया है। उसका विस्तार १००० वर्षों से हुआ है। एतन्नांग ने लिखा है कि १००० वर्षों से भारत में शिक्षा का प्रसार हुआ है। एतन्नांग ने लिखा है कि १००० वर्षों से भारत में शिक्षा का प्रसार हुआ है।

गुप्तवंश का वर्णन

गुप्तवंश का वर्णन १००० वर्षों से हुआ है। एतन्नांग ने लिखा है कि १००० वर्षों से भारत में शिक्षा का प्रसार हुआ है।



दिनोंदिन अभिवृद्धि कर रहा था। यह स्पष्ट है कि ईसवी सन् के प्रारम्भिक दिनों में ब्राह्मण अपने प्राचीन धर्म का पुनर्निर्माण कर और वैज्ञानिक आचारों पर करने लगे थे। अतः उनमें अपने-के-के भावनाएँ सर्वप्रिय होती जा रही थीं। गुप्तवंश के शासनकाल में हिन्दूधर्म का रूप बहुत व्यापक-सा हो गया और वह एक 'यूनिवर्सल' के समान बन गया। प्रत्येक भारतीय, चाहे उसके विचार किसी भी किस्म के क्यों न हों, ब्राह्मणों की उच्चता को स्वीकार करके तथा वेदों की अपौरुषेयता के सिद्धान्त को मान कर, उसका सदस्य बन सकता था। हिन्दू धर्म में से पुराना कुछ भी हटाया नहीं गया परन्तु बहुत-से नए विचार उसमें सम्मिलित कर लिए गए। हिन्दू कला भी एक नए क्षेत्र में जा पहुँची जहाँ चिन्हों की महत्ता बहुत बढ गई। हिन्दू देवताओं के शरीरों के मन्त्रन्ध में विचित्र-विचित्र टङ्ग की अलौकिक कल्पनाएँ कर ली गईं। सुदूर उत्तर में तामिल सन्तों ने धार्मिक प्रचार की भावना न पूरा होने सम्प्रदाय का प्रारम्भ किया। उधर पश्चिम में भागवत मन्त्र ही सर्वप्रिय होने लगा।

हिन्दू धर्म के इन नवीन रूप को बार-बार मंगले ने दाँट का सङ्घात है—(१) स्मार्त—वे लोग जो प्राग्वहकालीन वेदकालीन को परम प्रमाण मानते थे (२) शैव—वे वेदवादी थे (३) शैव (४) शाक्त। शैव और वेदवादी ने शक्त के उद्भव का भाव लेने हैं। शाक्तों का सम्प्रदाय विचारों तथा आचारों तक अनुभूति पर आधारित है। उन नहीं है वह तो पहले पूजा का एक शक्तिमान पद्धति है। इन-सी विचारों की मिलावट ही गुप्तवंश के देवताओं का पूजा

Handwritten scribble or mark at the top right corner.

4

दैनोदिन अभिवृद्धि कर रहा था। यह स्पष्ट है कि इसी सन्
 के प्रारम्भिक दिनों में ब्राह्मण अपने प्राचीन धर्म का पुनर्निर्माण
 और वैज्ञानिक आधारों पर करने लगे थे। अतः उनमें अपने
 नए भावनाएँ सर्वप्रिय होती जा रही थीं। गुप्तवंश के शासनकाल
 में हिन्दू धर्म का रूप बहुत व्यापक-सा हो गया और वह एक "धर्मों
 का समान" के समान बन गया। प्रत्येक भारतीय, चाहे उसके
 विचार किसी भी किस्म के क्यों न हों, ब्राह्मणों की उन्नता को
 स्वीकार करके तथा वेदों की अपौरुषेयता के सिद्धान्त को मान
 कर, उसका सदस्य बन सकता था। हिन्दू धर्म में से पुराना कुछ भी
 हटाया नहीं गया, परन्तु बहुत-से नए विचार उसमें सम्मिलित कर
 लिए गए। हिन्दू कला भी एक नए क्षेत्र में जा पहुँची, जहाँ चिन्हों
 का महत्ता बहुत बढ़ गई। हिन्दू देवताओं के शरीरों के सम्बन्ध में
 विचित्र-विचित्र ढङ्ग की अलौकिक कल्पनाएँ कर ली गईं। सुदूर
 दक्षिण में तामिल सन्तों ने धार्मिक प्रचार की भावना से पृथ
 क सम्प्रदाय का प्रारम्भ किया। उधर पश्चिम में भागवत सन्
 दिन सर्वप्रिय होने लगा।

हिन्दू धर्म के इन नवीन रूप को चार भागों में बाँटा जा
 सकता है—(१) स्मार्त—वे लोग जो प्रगल्भकालीन वेदक
 कालों को परम प्रमाण मानते थे (२) शैव—वे हिन्दू
 सन्त (४) शाक्त। शैव और वेष्णवा सन्तों के दृष्टि में, भाग
 वे सर्वप्रिय हैं। शाक्तों का सम्प्रदाय विचारों तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों
 पर आधारित आन्दोलन नहीं है वह तो कबल पृथक ही एक
 उच्चतर पद्धति है, जिस में बहुत-सी अज्ञानताओं का मिना हुआ है
 यह सम्प्रदाय अनेक नामों और रूपों से देवताओं का पूजा





प्राचीन भारत

पहुँचीं । दुर्भाग्य से गुप्तकालीन अधिकांश इम उपलब्ध नहीं होतीं । कुतुब मीनार के निकट दिल्ली विशाल कीली में लोहे के विभिन्न हिस्सों को इस चतुर गया है कि कुछ समय पूर्व तक उसके सम्बन्ध में यही था कि वह एक साथ सांचे में ढाली गई होगी । कुछ कलापूर्ण सुन्दर गुफाएँ भी इसी युग में बनी थीं । चित्र भारतीय चित्रकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं । इन कलापूर्ण चित्रों में कल्पना का भी खूब प्रयोग किया गया । साथ ही वे तत्कालीन वास्तविक जीवन का सही-सही हैं । उनसे हमें तत्कालीन भारतवर्ष के कलापूर्ण प्रमस्तिष्क का परिचय मिलता है ।

एल्लोरा—इस युग की एक श्रेष्ठतम कृति एल्लोरा भवन है, जो विश्वकर्मा को समर्पित किया गया है । वकाल तक एल्लोरा भारतीय शिल्पकला का केन्द्र रहा । है कि एल्लोरा के शिल्पियों ने कोई सघ बना रक् उसी सघ की ओर से देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा के इस सुन्दर मन्दिर का निर्माण किया गया ।

व्यापार और व्यवसाय—हम पहले ही कह चुके हैं कि तट से रोम साम्राज्य को खूब माल आता जाता था । मे एक ईसाई साधु इस देश में आया था । उसने अप वृत्तन्त लिखा है । उसका कथन है कि तब दक्षिण ईसाइयत का काफ़ी प्रचार हो रहा था । दक्षिण भारत के गाह खूब समृद्ध थे । वहा रोमन सिक्के बहुत बड़ी स प्राप्त हुए हैं । इससे प्रतीत होता है कि तब रोम का क

इस दंग में ख़ाता होगा। चौथी मरी के बाद जर्मन के साथ भारतवर्ष का व्यवसाय ने व्यापार कम हो गया। इसका कारण भी व्याख्यान किया जा चुका है।

सुमदग के समय भारतवर्ष का पृथ्वीय दर्जा घट गया। इसी कारण से अंग्रेजी व्यापार था, उसकी बदौलत समुद्र पार के व्यापार में भारतीय सभ्यता का प्रसार होने में काफी मदद मिली। इस व्यापारिक संपत्तियों के रहते भी इस युग में सभ्यता, ज्ञान और धर्म के साथ भारतवर्ष का सांस्कृतिक व्यापार शुरू रहता था।

ग्यारहवां अध्याय

प्राचीन भारतीय उपनिवेश

और

भारतीय सभ्यता का विदेशों में प्रसार

नए अन्वेषण—बहुत समय से यह समझा जाने लगा था कि भारतवासी स्वभाव ही से 'घर में रहने वाले व्यक्ति हैं'। समुद्र और हिमालय के घेरे ने उन्हें बाक़ो टुनिया से काट अलग कर रखा है। परन्तु अर्वाचीन अन्वेषणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन भारतीयों ने अपने देश की सभ्यता का प्रसार एशिया महाखण्ड के सुदूर प्रदेशों तक भी किया था। इन अन्वेषणों के आधार पर हमारे लिए यह सम्भव होगया है कि हम भारतीय इतिहास का चित्र बहुत बड़े चित्रपट पर बना सकें।

सुदूर पूर्व में भारतीय सभ्यता—हमें ज्ञात है कि प्राचीन भारतीय समुद्रों में यथेष्ट आते जाते थे और उन्होने उपनिवेशों का निर्माण भी किया था। ईसा की पहली सदी में, और सम्भवतः उससे भी ३, ४ सौ बरस पहले से, भारत महासागर सब्से अर्थों में भारतवर्ष का महासागर बन चुका था। पूर्व के अनेक देशों पर

भारत की धाक पर लगी थी। अनेक देशों ने भारतवर्ष से धर्म और संस्कृति का पाठ पढ़ा। साथ ही अनेक देशों को घमाने और उन्हें सभ्य बनाने का श्रेय भी भारतीयों को है। लंका, ब्रह्मा स्वाम, अनाम, नेपाल, तिब्बत, मध्य एशिया, मंगोलिया, चीन और जापान की गणना पहले दंग की श्रेणी में है। उक्त देशों में भारतवर्ष ने जो धार्मिक सन्देशवाहक महात्मा बुद्ध के सर्वजन-हितकारी उपदेशों का अमर सन्देश लेकर गए, उन्होंने इन देशों को भारतीय संस्कृति और भारतीय धर्म के रंग में रंग दिया। उन दिनों चीन की सभ्यता निस्सन्देह खूब उन्नत थी, परन्तु चीन ने भी भारतवर्ष से बहुत कुछ सीखा। इन सभी देशों का भारतवर्ष से एक तरह का गुरु शिष्य का-सा शान्तिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गया।

भारतीय उपनिवेश—दूसरी श्रेणी के देशों में फ्रेंचोडिया, चम्पा, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और वालो की गिनती है। इसवी सन के प्रारम्भिक दिनों में, भारतवर्ष के अनेक साहसी नागरिक इन देशों में जाकर बस गए। दक्षिण-पूर्वी एशिया के सम्पूर्ण प्रदेशों में एक समय भारतीय राजा राज्य कर रहे थे। उन सभी में भारतीय नागरिक आबाद हुए थे और इन दशा की कला, सभ्यता धर्म तथा साहित्य का उन सभी में प्रसार हो गया था। वहाँ संस्कृत के जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनसे प्रतीत होता है कि इन भारतीय उपनिवेशों में संस्कृत साहित्य के सभी अंगों का गम्भीर अध्ययन होता था। इन उपनिवेशों में पहले हिन्दू धर्म का प्रचार हुआ, उसके बाद, अनेक उपनिवेशों में उसका स्थान बौद्ध धर्म ने ले लिया।

अर्थों के दोनों धर्म मिश्रित रूप में भी दिखाई दिए। अनेक उपनिवेशों में धर्म और राजनीति को भी मिला दिया गया। इन उपनिवेशों के प्रमुख धर्म मन्दिरों से राष्ट्रीय भवनों का कार्य भी लिया जाता था। राजाओं को अर्धदैवीय माना जाता था। अनेक राजाओं के देहान्त के बाद उन की जो प्रस्तर मूर्तियाँ बनाई गईं, उन में उन्हें अपने अभीष्ट देवताओं का रूप भी दिया गया।

कम्बोडिया—इन उपनिवेशों में भारती-चीन का कम्बोडिया उपनिवेश सब से अधिक शक्तिशाली था। ईसा की पहली सदी में यहाँ भारतीय हिन्दू आवाद हुए थे। उन के कम्बोडिया में जाने पर वहाँ एक संगठित और शक्तिशाली राज्य स्थापित हुआ। उस की शासन व्यवस्था आर्यों भारतीय राज्यों के ढंग पर थी। कम्बोडिया एक सम्पन्न और उपजाऊ देश था। भारतीयों ने वड़ी आसानी से उसे समृद्ध बना दिया। आठवीं और नवीं सदी में वह उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा। कम्बोडिया में लोगो ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया और वर्तमान अंग-कोर घौम नामक स्थान पर उन्होंने अपनी शानदार राजधानी बनाई। कम्बोडिया के एक जगल में इस राजधानी के खण्डरात आज भी उपलब्ध होते हैं।

कम्बोडिया का पतन—तेरहवीं सदी में इस उपनिवेश का पतन आरम्भ हो गया। पहले उन स उत्तर दिशा का प्रदेश छिन गया और बाद में स्याम ने सम्पूर्णा कम्बोडिया को अपने अधीन कर लिया। आजकल यह प्रदेश फ्रांस के अधीन है और वर्तमान

सजा आदि की दृष्टि से यह मन्दिर बहुत ही ऊँची श्रेणी की कला का नमूना है ।

वोरोबुदूर का स्तूप—इसी तरह जावा में वोरोबुदूर का जो महान् स्तूप है, वह केवल जावा का नहीं, अपितु सम्पूर्ण बौद्ध संसार का सब से बड़ा स्तूप है । इसका निर्माण करने के लिए हजारों निपुण कारीगर बरसों तक मेहनत करते रहे होंगे और तब जाकर यह महान्, विशाल और ऊँची इमारत तैयार हो सकी होगी । इन सभी कृतियों की कला बहुत ही ऊँची कोटि की है और उन्हें देख कर प्राचीन भारतीय कलाकारों की घाक माननी ही पड़ती है ।

डा० फीनो (Finot) का कथन है कि “बहुत समय तक भारतवर्ष अपने को अपने अन्तरोप की सीमा में ही सीमित समझता रहा । परन्तु आज वह अभिमान भरी निगाह उठा कर समुद्र-पार के उन विस्तृत द्वीपों और प्रदेशों की ओर देख रहा है जहां कभी उस ने बड़े उन्नत और सम्पन्न उपनिवेशों का निर्माण किया था; जहां उस ने तत्कालीन संसार की बड़ी-बड़ी कलापूर्ण इमारतें बनाई थीं । वह समय दूर नहीं प्रतीत होता, जब नवीन भारत के सुपुत्र अपनी राष्ट्रीय सस्कृति के सुन्दरतम पुष्पों की पूजा करने के लिए सुदूर अगकोर तक की यात्रा किया करेंगे ।”

दक्षिण-पूर्वीय एशिया के इन सुदूर द्वीपों में अपना आधिपत्य जमाने के साथ ही साथ भारतीय सस्कृति बड़ी शान्ति के साथ पूर्व की ओर भी अपने कदम बढ़ा रही थी । भारतवर्ष का बौद्ध धर्म भारतीय सस्कृति की प्रकाशमान मरालें लेकर पूर्व के इन देशों



सदी के मध्य में, खोतन और मध्य एशिया के कतिपय अन्य प्रदेशों से बौद्ध धर्म का विश्वविजयी सन्देश चीन में पहुँचा और बहुत शीघ्र वह सम्पूर्ण चीन में लोकप्रिय हो गया। चीनी लोग पहले ही से पर्याप्त सभ्य थे। अपने इस नवीन धर्म के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेने की जबरदस्त इच्छा उन लोगों में उत्पन्न हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष और चीन में पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध पैदा हो गए। महात्मा बुद्ध की जन्मभूमि का दर्शन करके, इन अनेक सदियों में, हजारों चीनी बौद्ध भिक्षु अपने जन्म को सफल मानते रहे। भारतवर्ष से अनेक बौद्ध धर्माचार्यों को समय-समय पर चीन में निमन्त्रित किया जाता रहा। उन दिनों जल और स्थल दोनों मार्गों से चीन में आवागमन किया जाता था। बोधिधर्म नाम का एक महान भारतीय आचार्य सन ५२० में चीन के कैएटन बन्दरगाह पर उतरा। उज्जैन का सुप्रसिद्ध विद्वान परमार्थ मलाया और भारता-चीन के रास्ते चीन में पहुँचा। दोनों देशों की इस सांस्कृतिक घनिष्टता से चीन में साहित्य की भी खूब उन्नति हुई और वहाँ भारतीय साहित्य के अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया गया।

बौद्ध धर्म की एक और शाखा तिब्बत की राह से चीन में पहुँची। मंगोल राजा खुविलाई अपने अनुयायियों से कहा करता था कि लामा धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है। मंगोल वंश के शासन काल में उत्तरीय चीन में अनेक लामा मन्दिरों का निर्माण किया गया। ये मन्दिर वहाँ अब तक भी विद्यमान हैं। चीन के राजनीतिक इतिहास में भी लामा धर्म का भाग बड़ा महत्वपूर्ण है।



| गुर्जर | राष्ट्रकूट |
|----------------------------|---------------------------|
| वत्सराज (७८३ ईसवी) | ध्रुव (७७६—७६४) |
| | |
| नागभट्ट (८१५ ,,) | गोविन्द तृतीय (७६४—८१४) |
| | |
| रामभट्ट | अमोघवर्ष (८१४—८७७) |
| | |
| भोज ८४३—८६०) | कृष्ण द्वितीय (६०२) |
| | |
| महेन्द्रपाल (८६० से ६१०) | |

पाल

| |
|-----------------------------|
| धर्मपाल (७८०—८१५ ईसवी) |
| |
| देवपाल (८१५—८५० ,,) |
| |
| विप्रहपाल (८५०—८६० ,,) |
| |
| नारायणपाल (८६० से ६१५ ,,) |

इसका काल नवम शताब्दी में गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट ने तत्कालीन उत्तरीय भारत के सब से अधिक महत्वपूर्ण नगर-राज का विजय कर लिया। उनसे हिन्दू आन्तर और कर्नाट में जो अरबों शरीरनाशकार करवाता। कर्नाट पर नागभट्ट का अधिकार हो जाने पर उनका ध्यान से सुरक्षित रहना आवश्यक था। प्रभा की दृष्टि से। गुर्जर के निरन्तर नागभट्ट का राज में जो भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में पाल लोग हर एक सम्भवतः नागभट्ट ने ही विनमाल ही बनाये करीब ही गुर्जर राज्य का राजधानी बना दिया। कर्नाट में उसने उनका-

श्रवण वेलगोल की मूर्ति भारतवर्ष भर में निराली है। गंग वंश की एक शाखा ने उड़ीसा में करीब १००० वर्षों तक (छठी सदी से सोलहवीं सदी) राज्य किया ।

चालुक्य—ईसा की छठी शताब्दी में दक्षिण में एक नई शक्ति का उदय हुआ। चालुक्य वंश के जो लोग सम्भवतः उत्तर से आकर इस देश आवाद हुए थे, उनमें से पुलकेशिन प्रथम नाम के एक शक्तिशाली पुरुष ने वर्तमान बीजापुर जिले के वातापी या बादापी नाम के एक नगर को अपनी राजधानी बना कर एक प्रतापी राजवंश की स्थापना कर दी। पुलकेशिन प्रथम के दो उत्तर-धिकारियों ने उसके राज्य की शक्ति और क्षेत्र का खूब विस्तार कर दिया और तब गुजरात और सिन्ध को छोड़ कर वर्तमान बम्बई प्रान्त का अधिकांश भाग उसकी अधीनता में आ गया।

पुलकेशिन द्वितीय—चालुक्य वंश का सब से अधिक शक्तिशाली राजा पुलकेशिन द्वितीय (सन् ६०८ से ६४२ तक) हुआ है। उसने अपने शासन काल में बड़े-बड़े कार्य किए। पुलकेशिन द्वितीय का सम्पूर्ण जीवन युद्धों में ही व्यतीत हुआ। अपने पिता की मृत्यु के बाद, एक मामूली-से गृहयुद्ध में सफलता पाकर, वह राजगढ़ी पर बैठा और तब उसकी विजय यात्राएं प्रारम्भ हुईं। वह महाराजा हर्ष का समकालीन था। उसने हर्ष की विजयी सेनाओं को दक्षिण में नर्मदा में आगे नहीं बढ़ने दिया। पुलकेशिन द्वितीय की प्रशस्ति में लिखा है कि उसने लाट, उत्तर-पश्चिम के गुर्जरों और दक्षिण कोशलों के अतिरिक्त उत्तरमें कलिंग, दक्षिण में पल्लव और चोल लोगों को जीता। इस तरह विन्ध्याचल तक के दक्षिण भारत का अधीश्वर होने के अतिरिक्त वह उत्तरीय भारत के अनेक



नाम विट्ठल से विष्णुवर्धन कर लिया। उसने अपने शासन काल में बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण करवाया। उस के सम्वन्ध में कहा जाता है कि बाद में वह जैन धर्म का इतना विरोधी हो गया या कि उसने अनेक जैन आचार्यों को कोल्हू तथा चकियों में पिसना दिया। इस क्विदन्ती का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। ऐतिहासिक साक्षियों से तो यह सिद्ध होता है कि विष्णुवर्धन अत्यन्त उदार दिचारों का था, यहां तक कि उस की एक रानी और एक पुत्री जैन धर्म को मानने वाली थीं।

मलिक काफूर नामक मुसलमान विजेता ने देवगिरि के यादवों को हराया और होयसालों को भी अपने अधीन कर लिया। द्वारसमुद्र को उस ने तरस-नहस कर दिया और इस तरह ये दोनों चरा समाप्त हो गए।

होयसाल कला—विष्णुवर्धन और उस के उत्तराधिकारी कला के बड़े प्रेमी थे। उन के २०० वर्षों के राज्यकाल में, उन के देश में एक विशेष प्रकार की कला का खूब विकास हुआ। इस कला को 'होयसाल कला' कहा जाता है। इस कला पर बने मन्दिरों का आधार खूब चित्रित और भूषित होता है। उस पर तार के आकार के खम्बे छत को थामे रहते हैं। ऊपर प्रायः वरतन के आकार का आवरण रहता है। इन मन्दिरों की कला तथा निर्माण में विविधता और प्रचुरता है, सादगी नहीं। इस कला के मन्दिरों में द्वारसमुद्र का मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है। इस की निर्माण कला बड़े ऊँचे दर्जे की है।

रामानुज - वैष्णव आचार्य रामानुज विष्णुवर्धन के समकालीन थे। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में वह काची में रहे

ईसवी में लेकर ६२५ तक राज्य किया। उस की बनवाई हुई गुफाएँ तथा मन्दिर बड़े प्रसिद्ध हैं। राजा विष्णु वर्मन (६२५ से ६४५) इस वंश का मन्त्र से अधिक योग्य शासक था। उस ने पुलकेशिन द्वितीय को हरा कर न केवल पल्लवों की पहली पराजय का बदला ही चुका लिया अपितु शत्रु की राजधानी वातापी पर भी अधिकार कर लिया। विष्णु वर्मन के समय पल्लव सम्पूर्ण दक्षिण भारत में सब से अधिक शक्तिशाली बन गए।

नरसिंह वर्मन के राज्य काल में एनसांग ने पल्लव राज्य की यात्रा की। उस ने लिखा है कि पल्लव राज्य के लोग बड़े समृद्ध, उत्साहशील, विश्वासपात्र और स्वाध्यायप्रेमी हैं।

पल्लव कला—राजा नरसिंह वर्मन ने ममल्लपुरम की नींव डाली। दक्षिण के सुप्रसिद्ध रथ अथवा सात पैगोड़े भी उसी के शासन काल में बनाए गए। ये रथ एक बड़ी शिला काट कर बनाए गए हैं। इन शिलाओं के ऊपर मूर्ति अंकन का कार्य पल्लव राजाओं के शासनकाल में किया गया। प्रस्तर-चित्रों में "अर्जुन का प्रायश्चित्त" नामक चित्र बहुत प्रसिद्ध है। आठवीं सदी में कांची में अनेक मन्दिरों का निर्माण भी किया गया। स्मिथ ने लिखा है कि 'भारतीय कला पद्धतियों में पल्लव कला पद्धति तथा मूर्ति निर्माण कला का विशेष महत्वपूर्ण तथा निराला स्थान है।' वास्तव में दक्षिण में भारतीय कला का इतिहास इन्हीं पल्लवों के राज्य काल से प्रारम्भ होता है।

पल्लवों का हास—चालुक्यों के साथ पल्लवों का निरन्तर संघर्ष चला आ रहा था। सन् ७४० में चालुक्यों ने पल्लवों को बुरी तरह से हरा दिया और तब से पल्लव शक्ति का हास शुरू



चेरों, वेंगी के चालुक्यों, कुर्ग, मालावार तट, कर्लिग तथा लंका को जीता। उसके पास एक शक्तिशाली जल सेना भी थी। इस नौसेना की सहायता से उसने लक़दिव (Laccadives) और मालदिव (Maldives) आदि द्वीपो को भी जीता। इस तरह राजराजा सम्पूर्ण दक्षिण का एकच्छत्र शासक बन कर 'महान्' राजराजा कहलाने लगा। तंजौर का सुन्दर और विशाल मन्दिर उसके महत्वपूर्ण कलासम्बन्धी कार्यों की स्थिर यादगार है।

गजेन्द्र चोल प्रथम—राजराजा के बाद उसका सुयोग्य पुत्र राजेन्द्र (१०१२-१०३५) चोल साम्राज्य का अधिपति बना। इस राजेन्द्र क राज्य में चोल-साम्राज्य का अधिकतम विस्तार हो सका। उसको जल सेना ने बंगाल की खाड़ी को पार कर पेंगूराज्य, निकोबार द्वीप तथा अण्डेमान द्वीप समूह का विजय कर लिया। उत्तर में उसने बंगाल और बिहार के पालवंशीय राजा महीपाल को हरा कर बंगाल, उड़ीसा तथा दक्षिण कोशल तक अपना चोल साम्राज्य का विस्तार कर लिया। गंगा की घाटी की अपनी इस महान विजय की खुशी में उसने अपने नाम के पीछे 'गगेकोण्ड' का खिताब लगाना शुरू किया। इसी उपलक्ष्य में उसने अपनी नई राजधानी का नाम 'गगेकोण्डचोलपुरम' रक्खा। इस राजधानी में उसने एक विशाल राजमहल, एक अत्युच्च मन्दिर तथा १६ मील लम्बा एक नक़ला नील बनवाई। यह नगर अब उजड़ गया है और वे प्राचीन मकान खडरात हो रहे हैं।

चालुक्यों से संघर्ष—राजेन्द्र के देहान्त के बाद चोलों तथा चालुक्यों में परस्पर भयंकर संघर्ष शुरू हुआ। करीब १०५२ में

सदस्यों का चुनाव प्रतिवर्ष हुआ करता था। इन सभाओं के अधिकार बड़े विस्तृत थे। सम्भवतः ग्रामों के राजकर्मचारियों पर भी इसी सभा का नियन्त्रण रहता था। प्रत्येक ग्राम मण्डल का अपना-अपना राजकोश होता था। अपने ग्रामों की ज़मीनों पर इस मण्डल का पूरा अधिकार था। सिंचाई, उद्यान, न्याय आदि की व्यवस्था करने के लिए प्रत्येक मण्डल में अनेक उपसमितियाँ बनाई जाती थीं। ऐसे अनेक ग्राम मण्डल मिल कर एक ज़िला बनाते थे और अनेक ज़िले मिल कर एक विभाग। प्रत्येक प्रान्त में ऐसे अनेक विभाग थे। चोल साम्राज्य कुल मिला कर ६ प्रान्तों में विभक्त था।

भूमि की सम्पूर्ण उपज का छटा भाग भूमिकर के रूप में लिया जाता था। यह कर उपज और सुवर्ण—इन दोनों रूपों में स्वीकार किया जाता था। सम्पूर्ण भूमि का ठीक-ठीक माप किया गया था और पैमानों के परिमाण निश्चित कर दिये गये थे। भूमि की सिंचाई के लिए चोल राजाओं ने अनेक बड़े-बड़े सिंचाई के साधन बनवाए। नदियों पर बांध बाँधे गए। इन राजाओं के शासनकाल में राज्य की ओर से बड़े-बड़े निर्माण कार्य करवाए गए। राजेन्द्र प्रथम की १३ मील लम्बी भील का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। राज्य भर में सड़कें बनवाई गईं और उन की सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया। चोल राजाओं की जलशक्ति भी बड़ी प्रबल और सुव्यवस्थित थी।

यह स्पष्ट है कि चोल राजाओं की शासन व्यवस्था बहुत उत्तम थी। उस में प्रजा का सहयोग भी था। अभाग्य से चोल वंश के विनाश के साथ-साथ यह श्रेष्ठ शासन व्यवस्था भी नष्ट होगई।

-





लेखकों अध्याय

पूर्व-मध्यकालीन भारत

सांस्कृतिक इतिहास

पश्चिम में भारतीय-आर्य संस्कृति—हम देखते हैं कि इस युग में उत्तरीय भारतवर्ष में आर्य संस्कृति का हास शुरू हो गया था। परन्तु दक्षिण की भारतीय-आर्य संस्कृति में अभी तक यथेष्ट जीवन था और कला तथा साहित्य की दिशा में वह यथेष्ट रूप से उन्नत हो रही थी। विदेशी आक्रमणों तथा आन्तरिक लड़ाइयों ने उत्तरीय भारत के जीवन को खोखला कर दिया था। उधर सोलहवीं सदी में, विजयनगर के पतन तक, दक्षिण भारत विदेशी आक्रमणों से बचा रहा। दक्षिण की शान्त परिस्थितियों में आर्य संस्कृति उन दिनों भी विकसित होता चली जा रही थी।

हिन्दू धर्म की प्रधानता—धर्म के क्षेत्र में दक्षिण भारत में हिन्दू धर्म पुनः वहा का प्रधान धर्म बन गया। अपरिवर्तनशील हिन्दू धर्म के मीमांसा मत के महान पोषक कुमारिल तथा

का एक जाज्वल्यमान उदाहरण है।

शंकराचार्य—नवम शताब्दी में शैवमत के महान् प्रचारक शंकराचार्य ने उन्ने भारतवर्ष का सब से अधिक शक्तिशाली धर्म बना दिया। दार्शनिक विद्वत्ता तथा तर्क की प्रतिभा की दृष्टि से शंकराचार्य की गणना संसार के सर्वोच्च कोटि के विद्वानों में की जाती है। इसी शंकर ने जब घूम घूम कर अन्य धर्मों का अक्रान्द्य खण्डन शुरू किया तो बौद्ध तथा जैन धर्मों के मुकाबले में हिन्दू-धर्म बहुत लोकप्रिय होगया। सम्पूर्ण भारतवर्ष में शंकराचार्य की घूम मच गई।

शंकराचार्य का जन्म नम्यूदरी ब्राह्मणों के वंश में हुआ था। कुछ लोगों का कथन है कि उनका जन्म मालावार जिले में हुआ था। कतिपय विद्वानों की राय में चिदम्बरम उनका जन्म-स्थान था। दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध आचार्य गोविन्द ने शंकर को शिक्षा दी। वहां से शंकराचार्य हिन्दू साहित्य के महान् केन्द्र काशी में गए। काशी में रह कर उन्होंने ३ प्रस्थानों के सुप्रसिद्ध भाष्य लिखे। ये प्रस्थान हैं—११ उपनिषदें, भगवद् गीता और वेदान्त सूत्र। शंकराचार्य की इन महान् कृतियों ने उन्हें न केवल भारतीय साहित्य के इतिहास में ही अमर कर दिया, अपितु संसार के विद्वानों में उन्हें बहुत ऊँचा स्थान दे दिया। शंकराचार्य एक महान् विचारक तथा अदम्य तार्किक थे। पिछले ११०० सालों से हिन्दू दार्शनिक विचारों पर शंकराचार्य की गहरी छाप है।

शंकराचार्य की दिग्विजय—सम्पूर्ण काशी को अपनी प्रतिभा का कायल करके शंकराचार्य बौद्धिक दिग्विजय के लिए निकल

और इस युग में तो शैव मत और भी अधिक लोकप्रिय हो गया। भारतीय उपनिवेशों, चम्पा और कम्बोदिया में भी शैव मत का प्रचार हो गया। ह्यूनसांग के यात्रा वृत्तान्तों से ज्ञात होता है कि उन दिनों बलोचिस्तान में भी शैवमत का प्रचार था। काशी शैव मत का सुदृढ़ केन्द्र था। क्रमशः सम्पूर्णा भारतवर्ष शैव मन्दिरों से व्याप्त हो गया।

शैवमत के अनेक फिरकों में से पाशुपत और कापालकों के सिद्धान्त तथा क्रियाएँ बहुत ही भयंकर और घृणोत्पादक हैं। शैव मत का एक सम्प्रदाय लिंगायतों का भी है।

वाद का हिन्दू धर्म—इस युग में हिन्दू धर्म के साहित्य में धार्मिक गाथाओं (mythology) का खूब विकास हुआ। दार्शनिक दृष्टि से शंकर का अद्वैतवाद तत्कालीन हिन्दू दर्शन का सब से बड़ा मत था। सन् ११०० के करीब रामानुज ने वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना की। इस सम्प्रदाय ने भागवत सम्प्रदाय के आधार पर अपने विश्वासों का विकास किया और मूर्तिमान ईश्वर की सत्ता स्वीकार कर ली। रामानुज शंकर के दर्शन का प्रमुख विरोधी था। रामानुज के करीब एक सौ वर्षों के बाद दक्षिण में माधवाचार्य नाम का एक और हिन्दू सन्त पैदा हुआ। माधव ने एक द्वैध प्रणाली का प्रचार किया। उस का सम्प्रदाय अभी तक महत्त्वपूर्ण है। उस के कुछ समय बाद रामानन्द ने एक और हिन्दू सम्प्रदाय का प्रारम्भ किया। यह सम्प्रदाय रामानुजी सम्प्रदाय की एक शाखा के समान था। रामानन्दी लोग जातपात में विश्वास नहीं करते थे। इस सम्प्रदाय के अनेक आचार्यों ने भारतीय साहित्य को बहुत धनी बनाया है।

धर्म के बहुत निकट ले आया और तब हिन्दू और बौद्ध आदर्शों में उससे अधिक अन्तर नहीं बच रहा, जितना अन्तर विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों में हो सकता है ।

शिक्षा की व्यापकता—भारतीय जनता को शिक्षित बनाने का महत्वपूर्ण कार्य करीब १००० वर्षों तक बौद्ध भिक्षुओं के हाथ में रहा था । परन्तु गुप्त वंश के शासनकाल में यह कार्य पुनः ब्राह्मण कथकों के हाथों में आगया । वे लोग पुराण, रामायण, महाभारत आदि की शिक्षा भारतीय जनता को दिया करते थे ।

बौद्ध धर्म का शाहीकरण —अभाग्य से बौद्ध धर्म पर बहुत शीघ्र शाक्त सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पड़ गया । परिणाम यह हुआ कि बौद्ध तान्त्रिकों की घृणोत्पादक तथा भयंकर प्रक्रियाओं से सर्वसाधारण जनता में उनके प्रति विरोध के भाव उत्पन्न हो गए । इस घटना से बौद्ध धर्म का आध्यात्मिक दर्जा भी गिर गया और पूर्वीय भारत के इसी विकृत बौद्ध धर्म से तिब्बत में लामा धर्म का प्रादुर्भाव हुआ ।

हूण आक्रमण—उत्तर-पश्चिमी भारत में हूण आक्रमणों का प्रभाव बौद्ध धर्म के लिए घातक सिद्ध हुआ था । हूणों ने वहाँ के सुन्दर-सुन्दर बौद्ध मठों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था । अन्त में मुसलमानों ने बिहार और बंगाल में से भी बौद्ध धर्म का पूर्ण नाश कर दिया ।

बादल मत्त का अवसान—विदेशी आक्रमणों, आध्यात्मिक अवनति, राज्य का महापतन का अभाव, हिन्दू धर्म का नवजीवन, हिन्दू दार्शनिकों का प्रादुर्भाव आदि बातों ने बौद्ध धर्म की जीवन शक्ति का पूर्णतः ह्रास कर दिया । जब मुसलमानों ने बिहार और

गीतों की अधिकता है ।

साहित्य—इस युग के नाटक लेखकों में भवभूति और राज-शेखर प्रमुख हैं; उपन्यास तथा गद्य लेखकों में वाण, सुवन्धु और दण्डी सुप्रसिद्ध हैं; काव्यकारों में भारवि और माघ का दर्जा सब से ऊँचा है । ऐतिहासिक ढंग की कविता के लिए राजतरंगणी का लेखक कल्हण प्रसिद्ध है । राजनीति शास्त्र के ग्रन्थ कामन्दकीय नीति और शुक्रनीति, ज्योतिष में भास्कराचार्य के ग्रन्थ तथा चिकित्सा शास्त्र में वाग्भट्ट की कृतियाँ इस पूर्व-मध्यकालीन भारत के साहित्य की अमर कृतियाँ हैं ।

शुक्रनीति—मध्यकालीन भारत की राजनीतिक दशा तथा नीतिशास्त्र के विचारों को जानने के लिए शुक्रनीति से बढ़ कर अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है । शुक्रनीति की कुछ बातें तो बहुत ही प्राचीन काल का हैं । परन्तु जिस युग में शुक्रनीति का यह वर्तमान स्वरूप बना, उस युग में वर्ण व्यवस्था पूर्णतः अपरिवर्तनशील रूप धारण कर चुकी थी । शुक्रनीति में नगर निर्माण, ग्राम निर्माण, व्यापार-व्यवसाय, नगर समितियों, मन्त्रिमण्डल, राजसभाओं और राजा आदि के सम्बन्ध में खूब विस्तार के साथ लिखा है । नगर समितियाँ अपने अधिकारों की रक्षा किस तरह करें, इस सम्बन्ध में भी उपयोगी निर्देश दिए गए हैं ।

कला—इस युग में उत्तरीय भारत में जो कला सम्बन्धी निर्माण कार्य किए गए होंगे उन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मुसलमान आक्रान्ताओं ने उत्तर के प्रायः सभी धार्मिक मन्दिरों को तोड़फोड़ डालन का भरपूर प्रयत्न किया था ।

किसी को कुछ बताने में वे स्वभाव ही से बड़े कमीने हैं। जो कुछ उन्हें आता है, उसे वे खूब छिपा कर रखते हैं; किसी को, विशेष कर अन्य देश वालों को कुछ भी नहीं बताते। यह बात उन के विश्वास और धर्म का हिस्सा है कि संसार में केवल उन्हीं का देश है, केवल उन्हीं की जाति है और उन के अतिरिक्त अन्य देशों के निवासी बिलकुल मूर्ख और अज्ञानी हैं। वे इतने अभिमानी और बेवकूफ़ हैं कि यदि तुम उन्हें बतलाओ कि सुरासान और फारस में भी कोई विद्वान है, तो वे तुम्हें भूठ और नासमझ दोनों समझ लेंगे। यदि इन हिन्दुओं को बाकी संसार का कुछ भी पता होता तो वे बहुत शीघ्र बदल जाते क्योंकि इनके पूर्वज इन के समान संकुचित हृदय के नहीं थे।”

इस समय हिन्दू समाज में स्त्रियो को बहुत तुच्छता की दृष्टि से देखा जाने लगा था। वयव्यवस्था अपरिवर्तनशील होकर अत्याचार और दबाने का साधन बन गई थी।

प्राचीन भारत

ईसवी—

| | |
|---------|---|
| ४०-८८ | कैटकीसिद्ध प्रथम |
| ७८-११० | ” द्वितीय |
| १२०-२६२ | कनिष्क |
| २७३-२०२ | यज्ञश्री |
| ३२० | गुप्त सम्वत् का प्रारम्भ |
| ३२०-३२६ | चन्द्रगुप्त प्रथम |
| ३२६-३७५ | समुद्रगुप्त |
| ३७५-४३५ | चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य |
| ३६५ | शाहों की विजय |
| ३६६-४१५ | फाहियान की यात्रा |
| ४१३-४५५ | कुमारगुप्त प्रथम |
| ४५५ | प्रथम हूण आक्रमण |
| ४५५ | स्कन्दगुप्त का राज्यारोहण |
| ५०० | तोदमान की मालवा विजय |
| ५२८ | मिहिरगुल की हार |
| ६०६-४७ | हर्ष |
| ६०८-६४२ | पुलिफेशन द्वितीय (चालुक्य) |
| ६२६-४५ | हूणसांग की यात्राएँ |
| ६००-२५ | रुहेन्द्र वर्मन (पल्लव) |
| ६२५-४५ | नरसिंह वर्मन (पल्लव) |
| ७४० | कन्नौज के यशोवर्मन को काश्मीर के ललिता- दित्य ने हराया |
| ७६० | कृष्ण प्रथम का राज्यारोहण (राष्ट्रकूट) |

| | |
|-----------|------------------------------|
| ७७६-६४ | ध्रुव (राष्ट्रकूट) |
| ७८०-८१५ | धर्मपाल |
| ७८३ | वत्सराज का राज्यारोह |
| ७९४-८१४ | गोविन्द तृतीय (राष्ट्रकूट) |
| ८१५-७७ | अमोघवर्ष " " |
| ८१५ | नागभट्ट का राज्यारोह |
| ८१५-५० | देवपाल (प्रतिहार) |
| ८४०-६० | भोज " " |
| ६०२ | कृष्ण द्वितीय का राज्य |
| ६०७ | परान्तक प्रथम का राज |
| ६४२-६७ | गुजरात का मूलराज |
| ६५०-६६ | धांगा (चन्देल) |
| ६७३ | तैल ने कल्याण में चाल |
| ६८५ | राजराजा महान का राज |
| १०१२ | राजेन्द्र प्रथम |
| १०१८-६० | भोज (प्रमार) |
| १०३८ | एक भारतीय धर्म मण्ड |
| १०४६-११०० | कीर्तिवर्मन (चन्देल) |
| १०५२ | कोप्पम का युद्ध |
| १०७६-११२६ | छटा विक्रमादित्य (चा |
| ११००-६० | गोविन्द चन्द्र (गहरवर |

शब्दानुक्रमणिका

| अ | | अशोक | २०६ |
|----------------------|-----|-------------------|---------------|
| अगस्त्य | २३४ | का राज्याभिषेक | २०७ |
| अजातशत्रु | १५६ | प्रियदर्शी | २०७ |
| के उत्तराधिकारी | १६० | का मत-परिवर्तन | २०८ |
| अथर्ववेद | ५४ | की धर्म-यात्राएँ | १०६ |
| अनाम | ३२३ | का राज्य-विस्तार | २१४ |
| अन्तर्वर्ष्य सम्मिलन | ८८ | का पारिवारिक- | |
| अपरिवर्तनशील जातियां | ८८ | जीवन | २१४ |
| अवस्तानोई (अम्बष्ठ) | १६६ | और बौद्ध धर्म | २१५ |
| अभिसार | १६५ | के वंशज | २१८ |
| अमित्रघात | २०४ | के निर्माणा कार्य | २२३ |
| अमोधवर्ष | ३४३ | के स्तम्भ | २२३ |
| अयोध्या | ६८ | की गुफाएँ | २२५ |
| अर्थशास्त्र | १८८ | अश्वमेध | ७५, २२६, २८२, |
| और धर्मशास्त्र | १८६ | अष्टाध्यायी | १०१ |
| की विषय सूची | १६० | अस्तक | १५५ |
| की तिथि | १६३ | अस्सेकनी राज्य | १६४ |
| अलबरूनी | ३३ | आ | |
| अलाहाबाद की प्रशस्ति | २८० | आन्ध्र शक्ति | २३४, २३७ |
| अलैकज्ञाएड्या | २६६ | का प्रारम्भ | २३८ |
| अवन्ति | १५६ | आरण्यक | ४६ |

| | | | |
|------------------|----------|---------------------|----------|
| कन्नौज | ३२६ | कौटिल्य अर्थशास्त्र | १८० |
| ," की धर्म-सभा | ३०० | कोशल | १५१ |
| कम्बोडिया | ३१५ | कजरकसीज | १६३ |
| ," का पतन | १३५ | | ख. |
| कला | २७५ | कुरोष्ठी | ११५ |
| कलिंग युद्ध | २०७ | खारवेल | २३३ |
| कलिंग राज | २२८ | खोतन | १२१ |
| कल्याण | ३४४ | | ग. |
| कल्हण | ३७० | गणराज्य | १५७ |
| कामरूप | ३२८ | गहरवार वंश | ३५८ |
| काम्बोज | १५७ | गाथा ग्रन्थ | १०६ |
| काशी | १५१ | गान्धार | १५६ |
| ," का पतन | १५८ | ," कला | २६०, २६४ |
| काश्मीर | ३३० | गिरनार का शिलालेख | २५२ |
| कीथ | ५६ | गीता | १०६ |
| कुणाल | २१५, २१८ | गुप्तचर विभाग | २०२ |
| कुमारगुप्त | २८७ | गुप्तवंश | २७८, २६३ |
| कुरु | १५५ | गुप्त शासक, वाद के | २६१ |
| कुलोत्तुङ्ग | ३५३ | गुर्जर | ३३२ |
| कुशान | २५३ | गुर्जर वंश | ३३४ |
| ," शक्ति | २५२ | गोंडोफरनीज | २४७ |
| ," काल | २७२ | गौतम बुद्ध | १२३ |
| कैडफ्रीसिज प्रथम | २५३ | गौतमी पुत्र | २३६ |
| , द्वितीय | २५४ | गृहस्थ | ६६ |

राब्दालुकमणिका

४ ३३

| | |
|---------------|---------------------|
| रोहित वर्णांक | ३३६ |
| शोच | ३०३ |
| शरत्कर्मा | २२६ |
| ल. | १६६, १८० |
| करोटी | २०५ |
| शवंत | घ. |
| शंभ | श्रुटाकार शिरोभाग |
| ग. | च. |
| शरत्कर्मा | बन्देल कला |
| शरत्कर्मा | " वंश |
| शरत्कर्मा | बन्द्रगुप्त मौर्य |
| शरत्कर्मा | " मौरिय |
| शरत्कर्मा | " तिकन्दर |
| शरत्कर्मा | " की पंजाब विजय |
| शरत्कर्मा | " का देहान्त |
| शरत्कर्मा | " की दिनचर्या |
| शरत्कर्मा | बन्द्रगुप्त प्रथम |
| शरत्कर्मा | बन्द्रगुप्त द्वितीय |
| शरत्कर्मा | (विक्रमादित्य) |
| शरत्कर्मा | बन्धा |
| शरत्कर्मा | बाणक्य |
| शरत्कर्मा | बालुक्य ३४० |
| शरत्कर्मा | बालुक्यो का हास |
| शरत्कर्मा | " बेगी के |
| शरत्कर्मा | " वश |

| | |
|----------------|----------|
| बालुक्य संघर्ष | ३५२ |
| बीन | ३२१ |
| " स्रोत | ३२ |
| " से संघर्ष | २५४ |
| चेत वंश | १५५ |
| चेदी | १५५ |
| चोल | ३५१ |
| " शासन | ३५३ |
| " कला | ३५३ |
| चौहान वंश | ३५६ |
| ज. | |
| जरासन्य | ७० |
| जातर्पात | ६० |
| जाति विभाग | ६० |
| जापान | ३२६ |
| जावा | ३१६ |
| जिन्दावस्था | ५८ |
| जैन धर्म | १४१, ३६६ |
| सिद्धान्त | १४० |
| इतिहास | १४३ |
| मन का प्रचार | १४५ |
| पर कल्याचार | १४५ |
| " राजकल के | १४५ |
| साहित्य | १४५ |
| कला | १४६ |

| | | | |
|-----------------------|----------|---------------------|----------|
| बुद्ध को जीवन के कष्ट | १२० | बौद्ध धर्म का अवसान | ३६८ |
| „ का पुत्रजन्म | १२२ | „ „ का प्रादुर्भाव | ११७ |
| „ का प्रथम उपदेश | १२४ | बंगाल | २६५ |
| „ माता पिता से मिलना | १२५ | ब्रह्मचर्य | ६६ |
| „ का देहान्त | १२७ | ब्राह्मण्य | ४६, ५५ |
| „ के शिष्य | १३० | बाहुई भाषा | ४१ |
| „ की शिक्षाएं | १३३, १३६ | ब्राह्मी | ११२ |
| „ और स्त्रियां | १३२ | भ. | |
| „ का चरित्र | १३३ | भवभूति | ३७० |
| „ और मुहम्मद | १३५ | भागवत धर्म | १०८ |
| „ और ईसा | १३६ | भारत और पश्चिम | २७० |
| बुद्धगुप्त | ६६२ | भारती-आर्य जातियां | ५६ |
| बुद्धलर | ११२ | „—पार्थियन | २४६ |
| वैकिट्या | २४१, २४३ | „—वैकिट्यन | २४२ |
| वोरोबुदूर का स्तूप | ३१८ | „—यूरोपियन | ६, ४५ |
| वोर्नियो | ३१७ | „—यूनानी सम्बन्ध | २३० |
| वौकेफ़ाला | १७६ | भारतीय भूगोल | २६७ |
| बौद्ध अनुश्रुक्तियां | १८१ | „ उपनिवेश | ३१३ |
| „ फ़िलासफ़ी | १३८ | „ कला | ३७१ |
| „ साहित्य | १४१ | „ संस्कृति | ३६२ |
| „ धर्म का प्रचार | १३६, २५८ | भाषाए | १२ |
| „ „ और ईसाइयत | २७६ | भिक्षुसंघ | १२८ |
| „ „ का केन्द्र | २८६ | भोज | ३३५, ३५६ |
| „ „ का हास | ३०६, ३३७ | भौगोलिक विभाग | ३ |
| „ „ का शाक्तीकरण | ३६८ | भौतिक अवशेष | २५ |

| वर्ग का क्रम | विवरण | म. | म. | मौखरि वंश | राजदानक्रमविहीन |
|--------------|-----------|----------|----|---------------------|-----------------|
| 1 | का सत्यान | १५२ | | मौत्रलि विष्णुपुत्र | २०६ |
| 2 | का सत्यान | १५८ | | मौर्यकाल | १७६, २७६ |
| 3 | का सत्यान | १५५ | | " इतिहास के क्षेत्र | १७६ |
| 4 | का सत्यान | २४६ | | " स्थापत्यकला | १८० |
| 5 | का सत्यान | १२७ | | " साम्राज्य | १८३ |
| 6 | का सत्यान | १६६ | | " कालीन भाग्य | १६४ |
| 7 | का सत्यान | १५४ | | " कला | २०० |
| 8 | का सत्यान | ११०-१२६ | | " साम्राज्य का | २०० |
| 9 | का सत्यान | १०४ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 10 | का सत्यान | १००, २६० | | " साम्राज्य | १६६ |
| 11 | का सत्यान | ४१ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 12 | का सत्यान | ४६६ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 13 | का सत्यान | १०६ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 14 | का सत्यान | २६६ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 15 | का सत्यान | ३७ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 16 | का सत्यान | १० | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 17 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 18 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 19 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 20 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 21 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 22 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 23 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 24 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 25 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 26 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 27 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 28 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 29 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |
| 30 | का सत्यान | १५ | | का कालीन भाग्य | १६६ |

-

4

5

6

7

